।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

।। श्रीपराङ्कुशपरकालयतिवरवरवरप्रतिवादिभीकरगुरुभ्यो नमः ।।

नित्यानुसन्धानम्

(श्रीसम्प्रदाय के साधकों की सामान्य आचार-संहिता)

सर्वदेशदिशाकालेष्वव्याहतपराक्रमा ।
रामानुजार्यदिव्याज्ञा वर्धतामभिवर्धताम् ।।

प्रकाशक

श्रीधाममठाधीश्वर जगद्गुरु-रामानुजाचार्य

श्रीस्वामी डॉ. राघवाचार्यजी महाराज

श्रीधाममठ, रामकोट, निकट श्रीकनकभवन,

अयोध्या - २२४१२३, उत्तरप्रदेश (भारत)

(सम्पर्कसूत्र : ९४१५३७०६५१, ९६१६७०३२०९)

सम्पादक : अंकुर नागपाल (दिल्ली)

जय जय यतिराज फणि-राजावतार-मणे प्रबल-पाषण्ड-तमो-हरण भानो
विजयी भव ! विजयी भव !! विजयी भव !!!

शेषावतारो यतिराजो जगद्गुरुः श्रीमान् रामानुजाचार्यो महाभागः

आर्द्रायामुदितो महापुरिगतो हस्त्यद्रिमात्ताश्रमः श्रीरङ्गश्रियमेत्य शिष्यसहितो वेदान्तभाष्यं वदन् ।
शेषो दिग्विजयं विधाय सहितो विप्रैर्द्विपञ्चाशता भाति श्रीयदुभूधरे यतिवरः सम्पत्कुमारं भजन् ।।

।। श्रियै नमः ।।

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

।। श्रीपराङ्कुशपरकालयतिवरवरवरप्रतिवादिभीकरगुरुभ्यो नमः ।।

नित्यानुसन्धानम्

(श्रीसम्प्रदाय के साधकों की सामान्य आचार-संहिता)

ध्यातव्य : *पुस्तक में सर्वत्र संकलित पद्यभाग (श्लोकों) के चरणभेद (अर्थात् सामान्यतः अल्पविराम) को दर्शाने के लिए दो रंगों का प्रयोग किया गया है। तदनुसार लयबद्ध एवं सुमधुर पाठ करके श्रीभगवान् को प्रसन्न करना चाहिए। दीर्घ समासों को '–' के प्रयोग द्वारा सन्धि-विच्छेद किए बिना खण्डित किया गया है; ताकि संस्कृत से अनभिज्ञ लोगों को भी पाठ करने में सुविधा रहे।*

*** अथ पूर्वभागः ***

* प्रातःकालिक कृत्य *

ब्रह्ममुहूर्त मे निद्रा का त्यागकर तीन बार '**श्रीमते नारायणाय नमः**' कहते हुए भगवान् श्रीमन्नारायण का ध्यान करें। इसके बाद शय्या पर ही ...

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती ।

करमूले तु गोविन्दः करोमि कर-दर्शनम् ।।

— इस श्लोक को बोलकर अपनी हथेलियों को देखने के बाद मुखमण्डल एवं आँखों का स्पर्श करें। तदुपरान्त निम्नलिखित स्तोत्र का पाठ करें —

।। श्रीविष्णु-प्रातःस्मरण-स्तोत्रम् ।।

प्रातः स्मरामि भवभीति-महार्तिशान्त्यै नारायणं गरुडवाहन-मब्जनाभम् ।

ग्राहाभिभूत-वरवारण-मुक्तिहेतुं चक्रायुधं तरुण-वारिज-पत्रनेत्रम् ।।

प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना पादारविन्द-युगलं परमस्य पुंसः ।

नारायणस्य नरकार्णव-तारणस्य पारायण-प्रवण-विप्र-परायणस्य ।।

प्रातर्भजामि भजता-मभयङ्करं तं प्राक्-सर्वजन्म-कृतपाप-भयाप-हत्यै ।

यो ग्राहवक्त्र-पतिताङ्घ्रि-गजेन्द्रघोरशोक-प्रणाशनकरो धृतशङ्खचक्रः ।।

श्लोक-त्रयमिदं पुण्यं प्रात-रुत्थाय यः पठेत् ।

लोक-त्रय-गुरुस्तस्मै दद्यादात्म-पदं हरिः ।।

इसके बाद शय्या पर बैठे-बैठे ही निम्नलिखित श्लोकों का पाठ करें —

।। परमार्थ-श्लोक-द्वयम् (अर्चिरादि) ।।

सत्सङ्गाद् भव-निःस्पृहो गुरु-मुखाद् श्रीशं प्रपद्यात्मवान्

प्रारब्धं परिभुज्य कर्म-शकलं प्रक्षीण-कर्मान्तरः ।

न्यासादेव निरङ्कुशेश्वर-दया-निर्लून-मायान्वयो

हार्दानुग्रह-लब्ध-मध्य-धमनि-द्वारा बहिर्निर्गतः ।।

मुक्तोऽर्चिर्दिन-पूर्वपक्ष-षडुदङ्-मासाब्द-वातांशु-मद्-

ग्लौ-विद्युद्-वरुणेन्द्र-धातृ-महितः सीमान्त-सिन्ध्वा-प्लुतः।

श्रीवैकुण्ठ-मुपेत्य नित्य-मजडं तस्मिन् परब्रह्मणः

सायुज्यं समवाप्य नन्दति समं तेनैव धन्यः पुमान् ।।

प्रातर्-नित्यानु-सन्धेयं परमार्थं मुमुक्षुभिः ।

श्लोक-द्वयेन सङ्क्षिप्तं सुव्यक्तं वरदोऽब्रवीत् ।।

उपर्युक्त श्लोकों का पाठकर निम्नलिखित श्लोक को पढ़ें तथा पृथ्वीमाता की प्रार्थना करें —

समुद्र-मेखले देवि पर्वत-स्तन-मण्डले ।

विष्णु-पत्नि नमस्तुभ्यं पाद-स्पर्शं क्षमस्व मे ।।

फिर अपनी शय्या से नीचे उतरकर श्रेष्ठजनों को प्रणाम करें। तदनन्तर शास्त्र-निर्दिष्ट नियमानुसार शौच-आदि नित्य-क्रियाओं का सम्पादन करें। मिट्टी से हाथ को शुद्धकर १६ बार कुल्ला करके दन्तधावन करें तथा नदी, कूप, सरोवर या अन्य विधा से प्राप्त शुद्ध जल के द्वारा स्नानकर धुले हए पवित्र वस्त्र धारण करें। तत्पश्चात् शुद्ध कम्बल के आसन पर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठें और तिलक-धारण एवं सन्ध्यावन्दन करें। प्रयास करें कि उस समय विना सिला वस्त्र (धोती एवं दाहिने कंधे पर गमछा) ही पहनें। अपनी निजी उपासना बाज़ार से एक तुलसीमाला तथा ताँबे अथवा चाँदी के बने पंचपात्र लाकर पहले ही सुरक्षित रखें। माला जपने की समुचित विधि अपने दीक्षागुरु से ही सीखनी चाहिए।

* ऊर्ध्वपुण्ड्र-धारण *

चाँदी या ताँबे से बने तीर्थागार (पात्र) में रखे शुद्ध जल को उद्धरिणी के द्वारा थोड़ा-सा लेकर, बाएँ हाथ में लेकर **'वीर्याय अस्त्राय फट्'** कहकर बायाँ हाथ धोएँ। इसके बाद; प्रणवमन्त्र (**'ॐ'**) से पाँसे को बाएँ हाथ में रखकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर पाँसे (श्वेतमृत्तिका) पर थोड़ा-सा जल छिड़कें —

गन्ध-द्वारां दुरा-धर्षां नित्य-पुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्व-भूतानां त्वामिहो-पह्वये श्रियम् ।।

तदनन्तर अस्त्र-मन्त्र से बाएँ हाथ में रखे पाँसे के चारों ओर चुटकी बजाते हुए उसका रक्षण करें और प्रणवमन्त्र से उसको घिसकर, मूलमन्त्र से उस घिसी हुई मृत्तिका को छूकर अभिमन्त्रित करें। फिर उसके बीचों-बीच नृसिंह-बीजाक्षर (**'क्ष्रौं'**) अथवा षट्कोण-यन्त्र बनाकर मूलमन्त्र को लिखें। फिर शतधार-मन्त्र (**'भगवान् पवित्रं वासुदेवः पवित्रं शत-धारं सहस्र-धारम् अपरिमित-धारम् अरिष्टम् अच्छिद्रम् अच्युतम् अनन्तम् अक्षय्यम् अव्ययं परमं पवित्रं भगवान् वासुदेवः पुनातु'**) से पुनः थोड़ा जल छोड़कर तर्जनी अंगुली से मिट्टी और जल को खूब घिसकर मिलाएँ तथा श्रीभगवान् के पावन चरणारविन्दों का स्मरण करें। तत्पश्चात् दाएँ हाथ से उस घिसी हुई मिट्टी को ढँककर ***'विष्णोर्नुक-मन्त्र'*** एवं ***'पंचोपनिषद्-मन्त्र'*** का जप करें। 'विष्णोर्नुक-मन्त्र' इस प्रकार है : **'ॐ विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि यो अस्क-भाय-दुत्तरं सदस्थं विचक्र-माणस्त्रेधो-रुगायः'**। 'पंचोपनिषद्-मन्त्र' का स्वरूप है : **'१. ॐ षौं नमः पराय परमेष्ठ्यात्मने नमः, २. ॐ यां नमः पराय पुरुषात्मने नमः, ३. ॐ रां नमः पराय विश्वात्मने नमः, ४. ॐ वां नमः पराय निवृत्त्यात्मने नमः, ४. ॐ लां नमः पराय सर्वात्मने नमः।'**

तदनन्तर द्वादशाक्षर-मन्त्र (**'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**) बोलकर **'भगवन् अभीष्टं मे देहि'** — यह प्रार्थना करें तथा **'१. विष्णोरराटमसि, २. विष्णोः पृष्ठमसि, ३. विष्णोः श्नप्-त्रेस्थः, ४. विष्णोः स्यूरसि, ५. विष्णोर्ध्रुवमसि, ६. वैष्णवमसि, ७. विष्णवे त्वा'** — इन सात वैष्णव मन्त्रों के द्वारा मृत्तिका का अभिमन्त्रण करें। फिर तर्जनी अंगुली से थोड़ा भाग लेकर

मस्तक पर प्रणव (**'ॐ'**) से रखें और निम्नोक्त क्रम से प्रत्येक अंग पर, उसमें विद्यमान भगवद्व्यूह के मन्त्र का उच्चारणपूर्वक स्मरण करते हुए, निर्दिष्ट आकार वाला ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करें :—

१. **'ॐ केशवाय नमः'** (माथा, ४ अंगुल), २. **'ॐ नारायणाय नमः'** (मध्य उदर, १० अंगुल), ३. **'ॐ माधवाय नमः'** (हृदय, ८ अंगुल), ४. **'ॐ गोविन्दाय नमः'** (कण्ठमध्य, ४ अंगुल), ५. **'ॐ विष्णवे नमः'** (दायाँ उदर-भाग, १० अंगुल), ६. **'ॐ मधुसूदनाय नमः'** (दाईं भुजा, ८ अंगुल), ७. **'ॐ त्रिविक्रमाय नमः'** (दायाँ कण्ठ, ४ अंगुल), ८. **'ॐ वामनाय नमः'** (बायाँ उदर-भाग, १० अंगुल), ९. **'ॐ श्रीधराय नमः'** (बाईं भुजा, ८ अंगुल), १०. **'ॐ हृषीकेशाय नमः'** (बायाँ कण्ठ, ४ अंगुल), **'११. ॐ पद्मनाभाय नमः'** (पीठ, ४ अंगुल), तथा **'१२. ॐ दामोदराय नमः'** (कण्ठ-पृष्ठ, ४ अंगुल)।

यदि पाँसा घोलने हेतु उपर्युक्त विस्तृत मान्त्रिक-प्रक्रिया करने में किसी प्रकार की अशक्तता हो, तो भगवान् महाविष्णु का स्मरण करते हुए **'नारायण'**-नामोच्चारण करते हुए पाँसे को घोला जा सकता है। तथा उक्त बारह अंगों पर द्वादशतिलक को धारण करते समय निम्नलिखित श्लोकों का पाठ भी किया जा सकता है :—

चतुश्चक्रं नमस्यामि केशवं कनक-प्रभम् ।
नारायणं घनश्यामं चतुःशङ्खं नमाम्यहम् ।।
माधवं मणि-भङ्गाभं चिन्तयामि चतुर्गदम् ।
चन्द्रभासं चतुःशार्ङ्गं गोविन्द-मह-माश्रये ।।
विष्णुं चतुर्हलं वन्दे पद्म-किञ्जल्क-सन्निभम् ।

चतु-र्मुसल-मब्जाभं संश्रये मधुसूदनम् ।।
अग्निवर्णं चतुःखड्गं भावयामि त्रिविक्रमम् ।
वामनं बाल-सूर्याभं चतुर्वज्रं विभावये ।।
श्रीधरं पुण्डरीकाभं चतुष्पट्टं समाश्रये ।
चतुर्मुद्गर-मभ्येमि हृषीकेशं तडित्-प्रभम् ।।
पञ्चायुधं पद्मनाभं प्रणमाम्यर्क-रोचिषम् ।
दामोदरं चतुष्पाशम् इन्द्र-गोप-निभं हरिम् ।
वासुदेव-मुपासेऽहं पूर्णेन्दु-द्युति-सन्निभम् ।।

ध्यान रहे; नाखून से ऊर्ध्वपुण्ड्र न बनाएँ, केवल अंगुलिपर्व का ही प्रयोग करें। यद्यपि अतिशिष्ट श्रीवैष्णवों के यहाँ तिलकधारण में सींक का प्रयोग होता नहीं देखा गया, किन्तु भगवत्प्रीत्यर्थ सुन्दरतम तिलक बनाने हेतु सींक का प्रयोग किया जा सकता है। हृदय पर लगने वाला तिलक चार अंगुल का हो; तदतिरिक्त सभी ऊर्ध्वपुण्ड्र तीन अंगुली चौड़ा होने चाहिए। उन सभी के बीचों-बीच एक अंगुल-जितने भाग को दीपशिखा-आकार में श्रीचूर्ण लगाने हेतु रिक्त छोड़ देना चाहिए। पहले श्रीचूर्ण को पूर्वोक्त विधि के समान ही जल में घोलना चाहिए तथा उसके बीचों-बीच श्रीबीज (**'श्रीं'**) लिखना चाहिए। फिर निम्नांकित बारह लक्ष्मी-नाम-मन्त्रों से बारह अंगों में विद्यमान ऊर्ध्वपुण्ड्रों में पूर्वोक्त क्रमानुसार श्रीचूर्ण लगाना चाहिए :—

१. **ॐ श्रियै नमः**, २. **ॐ अमृतोद्-भवायै नमः**, ३. **ॐ कमलायै नमः**, ४. **ॐ चन्द्र-सौन्दर्यै नमः**, ५. **ॐ विष्णु-पत्न्यै नमः**, ६. **ॐ वैष्णव्यै नमः**, ७. **ॐ वरा-रोहायै नमः**, ८. **ॐ हरि-वल्लभायै नमः**, ९. **ॐ शार्ङ्गिण्यै नमः**, १०. **ॐ देव-देविकायै नमः**, ११. **ॐ लोक-**

सुन्दर्यै नमः, १२. **ॐ महालक्ष्म्यै नमः।**

शास्त्रों के अनुसार; यदि द्वादश-तिलक न कर सकें, तो न्यूनतम दो ऊर्ध्वपुण्ड (एक मस्तक पर तथा एक कण्ठपृष्ठ में) अवश्य धारण करें। प्रत्येक स्नान के पश्चात् ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिए। तदनन्तर दो बार अपने दीक्षागुरु का ***'श्रीपादतीर्थ'*** (चरणामृत) ग्रहण करके आचार्य की ***'तिरुवडि'*** (वस्त्र पर अंकित चरणचिह्न) को शिर पर रखकर अपने दीक्षागुरु की तनया का पाठ करना चाहिए। तत्पश्चात् सन्ध्यावन्दन-आदि कर्मों में प्रवृत्त होना चाहिए।

।। ज.गु.रा. स्वामी श्रीराघवाचार्यजी की तनया ।।

श्रीमत्कश्यप-गोत्र-लब्ध-जनुषं विद्या-विभूषोन्नतं
सच्छास्त्रार्णव-पारगामि-विदुषां मान्यं मनोज्ञ-श्रियम् ।
स्वाचार्ये च जगद्गुरौ बुधवरे श्रीवासुदेवे रतं
वन्दे वन्द्य-जगद्गुरुं मुनिवरं श्रीराघवार्यं गुरुम् ।।

ध्यान रहे; हमारे सम्प्रदाय में केवल श्वेतमृत्तिका (पाँसे) से ही ऊर्ध्वपुण्ड्र-धारण का विधान है। वस्तुतः ऊर्ध्वपुण्ड्र श्रीभगवान् के चरण-चिह्न का आकारमात्र हैं; जिन्हें श्रीवैष्णवलोग अपने मस्तक पर धारण करके आह्लादित होते हैं। उसके स्वरूप-आकार-परिमाण-आदि में गुरुपरम्परा ही प्रमाण है। सम्प्रदाय में स्त्रियों एवं पुरुषों के लिए ऊर्ध्वपुण्ड्र के स्वरूप में कुछ भेद है। अतः इसमें केवल अपने दीक्षागुरु के निर्देश का अनुसरण करना चाहिए। विना ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किए सभी पूजा-पाठ-आदि सत्कर्म निष्फल हो जाते हैं, अतः दीक्षाप्राप्त श्रीवैष्णव सदैव इसको धारण किए रहें। इसके अतिरिक्त कोई अन्य आकार अथवा तिलक श्रीवैष्णवों के मस्तक पर न आने पावे। साधक कभी हाथ अथवा वस्त्र से इसको पोंछे नहीं, अपितु स्नान-कालिक जल से इसका स्वतः मिटना

ही उचित है। स्नान के पश्चात् पुनः नवीन ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण कर लेना चाहिए। साथ ही; भस्म-रुद्राक्ष-आदि अन्य पदार्थों के प्रति भी उदासीन रहना चाहिए।

* संक्षिप्त सन्ध्या-प्रयोग *

विश्व की प्राचीनतम संस्कृति भारतीय संस्कृति है — यह निर्विवाद सिद्ध है। भारतीय संस्कृति का अपर नाम ***'आर्य संस्कृति'*** है। आर्य संस्कृति का पोषण एवं संरक्षण वर्णव्यवस्था पर टिका हुआ है। इसलिए हम कह सकते हैं कि वर्णाश्रमधर्म ही आर्यधर्म, सनातनधर्म एवं हिन्दुधर्म के नाम से जाना जाता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि ऐसे प्राचीनतम धर्म का संरक्षण, पोषण एवं संवर्धन ब्राह्मणों के तप, त्याग एवं ज्ञान द्वारा होता रहा है। वर्तमान युग में आधुनिकता की दौड़ में सभी भाग रहे हैं। उपभोगितावाद का यह युग भौतिकता के चरम पर पहुँच चुका है; जिसके कारण आज ब्राह्मण-समाज भी कहीं-न-कहीं प्रभावित होकर अपने आचार-विचार-आदि वैदिक संस्कारों से विमुख होता दिखाई पड़ रहा है। वेदों का वचन है कि ब्राह्मण परमात्मा का मुख है : ***''ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्''*** (यजुर्वेद ३१.११)। अतः मुख से तात्पर्य है — शरीर का प्रधान अंग = शिर। समस्त सृष्टि में समाज का शिर ब्राह्मण है। यदि ब्राह्मण (अर्थात् शिरोभाग) रोगग्रसित हो जाए, तो पूरे शरीर का नियामक दिमाग भी निष्क्रिय हो जाएगा। अतः ब्राह्मण को मानसिक एवं आत्मिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए कुछ आवश्यक नियमों का पालन करना चाहिए।

शास्त्रवचन है : ***''विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या''*** अर्थात् ब्राह्मण वृक्ष है, सन्ध्या उसकी जड़ है (चाणक्यनीति १०.१३)। जड़ के नष्ट हो जाने पर वृक्ष का नाश हो जाता है। अतः ब्राह्मण को अपने आपको सुरक्षित रखने के लिए

सन्ध्या नित्य-प्रति करनी चाहिए। ऐसे तो तीनों कालों की सन्ध्या का विधान है, परन्तु इस व्यस्ततम जीवन-शैली में जहाँ सन्ध्या का नाम भी ब्राह्मण नहीं जान रहा है; वहाँ यदि केवल प्रात:काल की संक्षिप्त सन्ध्या भी कर ली जाए; तो कुछ कल्याण होगा। कारण कि कहा गया है : ***''अकारणात् मन्दकरणं श्रेय:''*** अर्थात् कुछ न करने की अपेक्षा कुछ करना अच्छा ही है, ***''स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रयते महतो भयात्''*** (गीता २.४०)। अत: यहाँ सन्ध्या का संक्षिप्त विधान प्रस्तुत किया जा रहा है।

विगत पृष्ठों में वर्णित सभी कर्मों (स्नान-ऊर्ध्वपुण्ड्रधारण-आदि) का सम्पादन करके गायत्रीमन्त्र पढ़कर शिखाबन्धन करें। तदोपरान्त **'१. ॐ केशवाय नम:, २. ॐ नारायणाय नम:, ३. ॐ माधवाय नम:'** — इन तीन मन्त्रों को पढ़ते हुए शुद्धजल से तीन बार आचमन करें। फिर **'ॐ गोविन्दाय नम:'** कहकर हाथ धो लें। तदोपरान्त निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ते हुए अपने ऊपर जल छिड़कें :

ॐ अपवित्र: पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
य: स्मरते पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तर: शुचि:।।

तत्पश्चात् गायत्री-मन्त्र को पढ़कर शिखाबन्धन करें एवं दाहिने हाथ में जल लेकर **'हरि: ॐ तत्सत् अद्य श्रीभगवदाज्ञया तत्कैङ्कर्यरूपं प्रात:सन्ध्योपासनम् अहं करिष्ये'** — इस वाक्य के उच्चारण द्वारा सन्ध्यावन्दन का संकल्प करें और उस जल को भूमि पर छोड़ें। तदनन्तर अधोलिखित तीन मन्त्रों के द्वारा क्रमश: कोष्ठक में संकेतित तीन प्रकार के प्राणायाम करें :

१. (***'पूरक'*** = श्वास को पूर्णत: खींचे) — **'ॐ भू: ॐ भुव: ॐ स्व: ॐ मह: ॐ जन: ॐ तप: ॐ सत्यम्।'**

२. (***'कुम्भक'*** = श्वास को भीतर ही रोंके) — **'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।'**

३. (***'रेचक'*** = श्वास को पूर्णतः छोड़ें) — ***'ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।'***

इसके पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र को पढ़कर एक बार आचमन करें :

'ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापम् अकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्याम् उदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।'

तत्पश्चात् पुनः दो बार बिना किसी मन्त्र का उच्चारण किए आचमन करें। फिर गायत्रीमन्त्र का उच्चारण करते हुए तीन बार भगवान् सूर्यनारायण को अर्घ्य दें। प्रयास करें कि सूर्योदय के ४८ मिनट बाद तक सन्ध्यावन्दन हेतु अवश्य बैठ जाएँ। किन्तु यदि उक्त समय में सूर्यदेव को अर्घ्य देने से चूक जाएँ, तो एक अतिरिक्त (चौथी बार) अर्घ्य देना चाहिए। अर्घ्य देने के बाद दाहिने हाथ के अँगूठे से दाएँ नासिकापुट, नेत्र तथा कान का स्पर्श करें तथा भगवान् के निम्नलिखित बारह नामों से तर्पण (जलदान) करें :

१. **ॐ केशवं तर्पयामि,** २. **ॐ नारायणं तर्पयामि,** ३. **ॐ माधवं तर्पयामि,** ४. **ॐ गोविन्दं तर्पयामि,** ५. **ॐ विष्णुं तर्पयामि,** ६. **ॐ मधुसूदनं तर्पयामि,** ७. **ॐ त्रिविक्रमं तर्पयामि,** ८. **ॐ वामनं तर्पयामि,** ९. **ॐ श्रीधरं तर्पयामि,** १०. **ॐ हृषीकेशं तर्पयामि,** ११. **ॐ पद्मनाभं तर्पयामि,** १२. **ॐ दामोदरं तर्पयामि।**

तत्पश्चात् आचमन करके **'श्रिया सहितोऽच्युतः प्रीयताम्। इदं श्रीभगवत्-**

समाराधनं श्रीकृष्णार्पणम् अस्तु' बोलकर आचमनी से थोड़ा-सा जल भूमि पर छोडें। फिर अधोलिखित श्लोक से सूर्यमण्डल में भगवान् श्रीमन्नारायण का नमस्कारपूर्वक ध्यान करें :

ध्येयः सदा सवितृ-मण्डल-मध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासन-सन्निविष्टः ।
केयूर-वान् मकर-कुण्डल-वान् किरीटी
हारी हिरण्मय-वपु-र्धृत-शङ्ख-चक्रः ।।

तत्पश्चात् सूर्यभगवान् की सात परिक्रमा करके पुनः अपने आसन पर बैठकर गायत्रीमन्त्र का तुलसी-माला पर न्यूनतम १०८ — अधिकाधिक यथाशक्ति जप करें। तदनन्तर पूर्वोक्त विधि के अनुसार आचमन एवं प्राणायम करें एवं समस्त कार्य को सम्पादित करने के बाद तीन बार **'श्रीमन्नारायणार्पणम् अस्तु'** कहकर श्रीभगवान् के प्रति अपनी इस सन्ध्योपासना को समर्पित करते हुए जल को छोड़ें।

सन्ध्योपासना करने के बाद निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करके अपनी गुरुपरम्परा को प्रणाम करें :

अस्मद्-देशिक-मस्मदीय-परमाचार्या-नशेषान् गुरून्
श्रीमल्लक्ष्मण-योगिपुङ्गव-महापूर्णं मुनिं यामुनम् ।
रामं पद्म-विलोचनं मुनिवरं नाथं शठद्वेषिणं
सेनेशं श्रिय-मिन्दिरा-सहचरं नारायणं संश्रये ।।

इसके बाद; जो भी पूजा-पाठ-आदि करना हो, उसको सम्पन्न करें; क्योंकि सन्ध्या करने के बाद ही किसी भी देवी-देवता के पूजन का अधिकार प्राप्त होता है; अन्यथा सारी पूजा व्यर्थ हो जाती है। जबकि नियमित सन्ध्या-गायत्रीजप-

आदि करने से ब्रह्मतेज की वृद्धि होती है तथा २४ घण्टें में भूल-चूक से हुए पापों का प्रायश्चित होता रहता है। सन्ध्या की अनिवार्यता केवल परम्पराप्राप्त यज्ञोपवीत से सम्पन्न पुरुषों के लिए है। अन्यों के लिए तो इतना ही नियम है कि भाव में सूर्यभगवान् को अर्घ्य देकर प्रणाम करें तथा भगवान् के नाम अथवा अपने दीक्षागुरु के द्वारा निर्दिष्ट पौराणिक-स्तोत्र का पाठ कर लें।

* अथ मन्त्र-जपविधिः *

।। तत्र श्रीनारायण-अष्टाक्षर-मन्त्रः ।।

अथ विनियोगः = (दाहिने हाथ में आचमनी में जल लेकर —) **ॐ अस्य श्रीमद्-अष्टाक्षर-महा-मन्त्रस्य श्री-बदरिकाश्रम-निवासी श्रीमन्नारायणः ऋषिः, देवी गायत्री छन्दः, अधि-परमात्मा श्रीमन्नारायणो देवता, ॐ बीजम्, आयः शक्तिः, नमः कीलकम्, श्रीमद्-भगवद्-भागवताचार्य-कैङ्कर्य-रूपे जपे विनियोगः।** (— इतना कहकर जल भूमि पर छोड़ दें)

अथ सर्वाङ्ग-न्यासः = ॐ साध्यो नारायणो ऋषये नमः शिरसि। ॐ अधि-परमात्मा-देवतायै नमः हृदये। ॐ बीजाय नमः गुह्ये। ॐ आयः शक्त्यै नमः पादयोः। ॐ नमः कीलकाय नमः नाभौ। ॐ नमो नारायणाय इति सर्वाङ्गे।

अथ प्रथमः हृदयादि-न्यासः = ॐ क्रुध्वोल्कायै स्वाहा हृदयाय नमः। ॐ महोल्कायै स्वाहा शिरसे स्वाहा। ॐ वीरोल्कायै स्वाहा शिखायै वौषट्। ॐ ह्युल्कायै स्वाहा कवचाय हुम्। ॐ सहस्रोल्कायै स्वाहा अस्त्राय फट्।

अथ कर-न्यासः = ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ नमः तर्जनीभ्यां नमः। ॐ नारायणाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ॐ अनामिकाभ्यां नमः। ॐ नमः कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ नारायणाय कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः।

अथ द्वितीयो हृदयादि-अङ्गन्यासः = ॐ ज्ञानाय हृदयाय नमः। ॐ नमः ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा। ॐ नारायणाय शक्त्यै शिखायै वषट्। ॐ बलाय कवचाय हुम्। ॐ नमः तेजसे नेत्राभ्यां वौषट्। ॐ नमो नारायणाय वीर्याय अस्त्राय फट्।

अथ अक्षरन्यासः = ॐ ॐ नमः मूर्ध्नि। ॐ नं नमः भ्रूमध्ये। ॐ मों नमः हृदये। ॐ नां नमः भुजयोः। ॐ रां नमः जङ्घयोः। ॐ यं नमः पृष्ठे। ॐ णां नमः जानुनोः। ॐ यं नमः पादयोः। ॐ ब्रह्म भूभुर्वः स्वरोम् इति दिग्बन्धः।

अथ दिग्बन्धनम् = (१) ॐ पूर्व-दिशं चक्रेण बध्नामि, ॐ चक्राय स्वाहा, ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्। (२) ॐ अग्नि-दिशं चक्रेण बध्नामि, ॐ आ चक्राय स्वाहा, ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्। ॐ दक्षिण-दिशं चक्रेण बध्नामि, ॐ विचक्राय स्वाहा, ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्। (४) ॐ नैर्ऋति-दिशं चक्रेण बध्नामि, ॐ सुचक्राय स्वाहा, ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्। (५) ॐ पश्चिम-दिशं चक्रेण बध्नामि, ॐ श्रीचक्राय स्वाहा, ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्। (६) ॐ वायवीय-दिशं चक्रेण बध्नामि, ॐ त्रैलोक्य-चक्राय स्वाहा, ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्। (७) ॐ उत्तरदिशं चक्रेण बध्नामि, ॐ ज्वाला-चक्राय स्वाहा, ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्। (८) ॐ ईश-दिशं चक्रेण बध्नामि, ॐ सुचक्राय स्वाहा, ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्। (९) ॐ ऊर्ध्व-दिशं चक्रेण बध्नामि, ॐ असुर-रक्षान्तक-चक्राय स्वाहा, ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्। (१०) ॐ अधो-दिशं चक्रेण बध्नामि, ॐ आधार-चक्राय स्वाहा, ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्। (११) ॐ अन्तरिक्षं चक्रेण बध्नामि, ॐ काल-चक्राय स्वाहा, ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्। ॐ स्वाहा, चक्राय स्वाहा, त्रैलोक्यं रक्ष रक्ष

हुं फट स्वाहा।

तदनन्तर १. शंख, २. चक्र, ३. गदा, ४. पद्म, ५. शार्ङ्ग, ६. खड्ग, ७. गरुड एवं ८. श्रीवनमाला — ये आठ हस्तमुद्रा बनाएँ एवं निम्नलिखित श्लोकों को अर्थानुसन्धानपूर्वक पढ़ते हुए ध्यान करें कि दिव्य वैकुण्ठ-धाम में श्री-देवी (माता लक्ष्मी), भू-देवी (माता पृथिवी), नीला-देवी और अपने परिकर-पार्षदों सहित भगवान् श्रीमन्नारायण अपने रत्नमय सिंहासन पर विराजमान हैं :

अथ ध्यानम् =

बालार्क-कोटि-सङ्काशं पीत-वस्त्रं चतुर्भुजम् ।
पद्म-पत्र-विशालाक्षं सर्वाभरण-भूषितम् ।।
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-चतुर्भिर्-दोर्भि-रेव च ।
श्रीभूमि-सहितं देवम् आसीनं पङ्कजासने ।।
तत्र चाधार-शक्त्याद्यैर्-धर्माद्यैः सुरभि-वृत्तैः ।
दिव्य-रत्न-मये पीठे पङ्कजेऽष्ट-दले शुभे ।।
तत्कर्णिकोपरि तल्पे तप्त-काञ्चन-सन्निभे ।
देवीभ्यां सहितं परमम् आसीनं पङ्कजासने ।।
चिन्तयेद् दक्षिणे पार्श्वे लक्ष्मीं काञ्चन-सन्निभाम्।
पद्म-हस्तां विशालाक्षीं दुकूल-वसनां शुभाम् ।।
वामे दूर्वा-दल-श्यामां विचित्राम्बर-भूषिताम् ।
महिषीं च दलायेषु चिन्तयेद् धृत-चामराम् ।।
चिन्तयेद् धरणीं देवीं नीलोत्पल-धरां शुभाम् ।
एवमष्टाक्षरं नित्यं जपेत् प्रयत-मानसः ।।

इस प्रकार; श्रीभगवान् का ध्यान करके अष्टाक्षर मूलमन्त्र (प्रथम गुरुमन्त्र =

''**ॐ नमो नारायणाय**'') का न्यूनतम तीन माला अथवा यथाशक्ति जप करना चाहिए। जो लोग उपर्युक्त न्यास-आदि करने में असमर्थ हों, वे केवल ऊपर रेखांकित किए गए विनियोग एवं ध्यान को श्रद्धापूर्वक पढ़कर अपना जप आरम्भ कर सकते हैं। इस मूल-मन्त्र को यथाशक्ति जप लेने के पश्चात् निम्नलिखित द्वय-मन्त्र का जप करना चाहिए।

।। अथ द्वय-मन्त्र-जप-विधिः ।।

अथ विनियोगः = (पूर्ववत् जल लेकर निम्नोक्त वाक्य का उच्चारण करें–)

ॐ अस्य श्री-शरणागति-महामन्त्रस्य लक्ष्मी-नारायण ऋषिः, देवी गायत्री छन्दः, परमात्मा श्रीलक्ष्मी-नारायणो देवता, श्रीमद्-भगवद्-भागवताचार्य-कैङ्कर्य-रूपे जपे विनियोगः। (— इतना कहकर जल छोड़ें)

अथ कर-न्यासः = श्रीमन्नारायण-चरणौ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। शरणं तर्जनीभ्यां नमः। प्रपद्ये मध्यमाभ्यां नमः। श्रीमते अनामिकाभ्यां नमः। नारायणाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। नमः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः।

अथ हृदयादि-न्यासः = श्रीमन्नारायण-चरणौ हृदयाय नमः। शरणं शिरसे स्वाहा। प्रपद्ये शिखायै वषट्। श्रीमते कवचाय हुम्। नारायणाय नेत्राभ्यां वौषट्। नमः अस्त्राय फट्।

अथ ध्यानम् =

क्षीराम्भो-निधि-रत्न-मण्डप-महा-सौवर्ण-सिंहासने
वामाङ्के स्थितया प्रसन्न-वदनं श्रीकान्तयाऽलिङ्गितम् ।
दोर्दण्डाङ्कित-शङ्ख-पङ्कज-गदा-चक्रै-रुदार-श्रियं
त्वां नित्यं कलयामि जन्म-विमुखो लक्ष्मीश नारायण ।।

इस प्रकार; ध्यान करके द्वय-मन्त्र (द्वितीय गुरुमन्त्र = ''**श्रीमन्नारायण-**

चरणौ शरणं प्रपद्ये। श्रीमते नारायणाय नमः'') का २४ बार जप करना चाहिए। उपर्युक्त न्यास करने में असमर्थ लोग केवल ऊपर रेखांकित किए गए विनियोग एवं ध्यान का पाठ करके श्रद्धापूर्वक द्वय-मन्त्र का जप करें। इसके पश्चात् चरम-मन्त्र का जप करना चाहिए।

।। अथ चरम-मन्त्र-जप-विधिः ।।

अथ विनियोगः = (पूर्ववत् जल लेकर निम्नलिखित वाक्य का उच्चारण करें —) **ॐ अस्य श्री-चरम-श्लोक-महा-मन्त्रस्य पार्थ-सारथि ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, परमात्मा श्रीकृष्णो देवता, पार्थ-सारथि-प्रीत्यर्थ जपे विनियोगः।** (— इतना कहकर जल को भूमि पर छोड़ दें)

अथ कर-न्यासः = सर्व-धर्मान् परित्यज्य अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। मामेकं शरणं व्रज तर्जनीभ्यां नमः। अहं त्वा अनामिकाभ्यां नमः। सर्व-पापेभ्यो मध्यमाभ्यां नमः। मोक्षयिष्यामि कनिष्ठिकाभ्यां नमः। मा शुचः कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः।

अथ हृदयादि-न्यासः = सर्व-धर्मान् परित्यज्य हृदयाय नमः। मामेकं शरणं व्रज शिरसे स्वाहा। अहं त्वा शिखायै वषट्। सर्व-पापेभ्यो कवचाय हुम्। मोक्षयिष्यामि नेत्राभ्यां वौषट्। मा शुचः अस्त्राय फट्।

अथ ध्यानम् =

यत्प्रपत्तिं विना सर्वैः यस्य माया दुरत्यया ।
धनञ्जय-रथस्थं तं प्रपद्ये शरणं महः ।।

इस प्रकार; ध्यान के पश्चात् चरम-मन्त्र (तृतीय गुरुमन्त्र = ''**सर्व-धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्व-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः**'') का १० बार जप करें। न्यास करने में असमर्थ लोग केवल ऊपर रेखांकित किए गए विनियोग एवं ध्यान का पाठ करके श्रद्धापूर्वक चरम-मन्त्र

का जप करें।

तीनों गुरुमन्त्रों (रहस्यत्रय) का जप पूर्ण करके यथाशक्ति-यथोपचार भगवान् की पूजा-भोगार्पण-आरती-आदि करें तथा पुस्तक में अन्यत्र संकलित पुष्पांजलि एवं गुरुपरम्परा का पाठ करें। यदि समग्र पाठ सम्भव न हो, तो रेखांकित श्लोकों का ही पाठ अवश्य करें। इस प्रकार; भगवान् से अपनी समग्र उपासना-विधि में हुई त्रुटियों हेतु क्षमा माँगते हुए उन्हें साष्टांग प्रणामपूर्वक अपने द्वारा की गई समग्र पूजा उन्हें समर्पित करें। स्त्रियों के लिए साष्टांग प्रणाम करना वर्जित है, अत: वे खड़े-खड़े ही प्रणाम करें; उन्हें साष्टांग प्रणाम का ही फल प्राप्त होगा।

* यज्ञोपवीत-धारण-विधि *

जिनका यज्ञोपवीत (उपनयन, व्रतबन्ध) संस्कार हो चुका है, उन्हें यज्ञोपवीत को सदैव धारण किए रहना चाहिए। खण्डित अथवा अशुद्ध हो जाने पर भी जब तक नया यज्ञोपवीत धारण न कर लिया जाए, तब तक पुराने का त्याग न करें। यज्ञोपवीत को बदलते समय पूर्वोक्त विधि से आचमन एवं प्राणायाम करने के अनन्तर निम्नलिखित वाक्य को पढ़कर संकल्प करें : **'श्रीभगवदाज्ञया श्रीमन्नारायण-प्रीत्यर्थं श्रौत-स्मार्त-विधि-विहित-नित्य-कर्मानुष्ठान-योग्यता-सिद्ध्यर्थं नूतन-यज्ञोपवीत-धारणम् अहं करिष्ये'**। फिर नए यज्ञोपवीत को किसी कटोरी अथवा दोने में रखकर, निम्नलिखित मन्त्रों को पढ़ते हुए, जल से उसको प्रोक्षित (अभिसिंचित) करें :

''ॐ आपो हिष्ठा मयो भुवः। ता न ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिव तमो रसः तस्य भाजयते हनः। उशातीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।।''

तत्पश्चात् अपने बाएँ हाथ में यज्ञोपवीत को रखकर उसको दाएँ हाथ से ढकें एवं उसके नौ तन्तुओं के देवताओं तथा ग्रन्थि-देवताओं का निम्नलिखित-वाक्योच्चारण-पूर्वक आह्वान करें :

''प्रथम-तन्तौ ॐकारं न्यसामि। द्वितीय-तन्तौ अग्निं न्यसामि। तृतीय-तन्तौ सर्पान् न्यसामि। चतुर्थ-तन्तौ सोमं न्यसामि। पञ्चम-तन्तौ पितॄन् न्यसामि। षष्ठ-तन्तौ प्रजापतिं न्यसामि। सप्तम-तन्तौ वायुं न्यसामि। अष्टम-तन्तौ यमं न्यसामि। नवम-तन्तौ विश्वान् देवान् न्यसामि। ग्रन्थि-मध्ये = ब्रह्माणं न्यसामि। विष्णुं न्यसामि। रुद्रं न्यसामि।''

फिर अपने गोत्र एवं प्रवर के ऋषियों का आह्वानकर (उदाहरण कश्यप होने पर ***'कश्यपं न्यसामि'*** कहकर) दस बार गायत्री-मन्त्र द्वारा उस नवीन यज्ञोपवीत को अभिमन्त्रित करें एवं श्रीभगवान् के श्रीचरणों में अर्पित करके निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए धारण करें :

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्-यत् सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्य-मग्र्यं प्रति-मुञ्च-शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।
यज्ञोपवीत-मसि-यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीते नोपह्वयामि ।।

तत्पश्चात् दो बार आचमन करके पुराने यज्ञोपवीत को उतारकर **'ॐ समुद्रं गच्छस्वाह'** कहकर उसको किसी नदी में जल में अथवा पवित्र स्थान पर छोड़ दें तथा दस बार गायत्री-मन्त्र का जप करें।

यज्ञोपवीत धारण करने वालों को चाहिए कि वे मल-मूत्र का त्याग करते समय उसको दाहिने कान पर तीन बार लपेटकर शौच-आदि क्रियाएँ करें। फिर विधिवत् हाथ धोकर एवं कुल्ला करके ही यज्ञापवीत को कान से उतारें। यज्ञोपवीत में चाभी-छल्ला-इत्यादि बाँधना अपराध है। किसी की शवयात्रा में

जाने के बाद, अशौच के बाद, सूतक की समाप्ति पर, संक्रान्ति पर एवं विशेष धार्मिक पर्व पर नया यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए।

गृहस्थों को सदैव एक जोड़ा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए; क्योंकि केवल संन्यासी या ब्रह्मचारी के लिए ही एक यज्ञोपवीत के धारण का विधान है। हालाँकि ब्रह्मचारी के लिए एक जोड़ा (अर्थात् दो) यज्ञोपवीत पहनने का कोई निषेध नहीं है।

* नित्य-भगवदाराधन-विधि *

सभी श्रीवैष्णवों को अपने घरों में गृहार्चा-विग्रह (यथा लड्डूगोपालजी, शालिग्राम शिला अथवा चित्रपट) की पूजा करनी चाहिए। स्त्रियाँ शालिग्राम-पूजा न करें; क्योंकि शास्त्रों में स्त्रियों के लिए शालिग्राम का स्पर्श निषिद्ध है। नित्यपूजा में, विधि के बजाय, भक्तिभाव का अधिक महत्त्व है। अत: शास्त्रीय-मर्यादा की रक्षा करते हुए अपने भावानुसार भगवान् का पूजन-अर्चन करना चाहिए। भगवान् श्रीहरि के पूजन में शृंगार, तुलसी-समर्पण तथा भोग का विशेष महत्त्व है।

।। कतिपय विशिष्ट नियम ।।

१. अपने लिए निर्मित प्रत्येक पदार्थ को भगवान् के प्रति निवेदित अवश्य करें।

२. प्रतिदिन भगवान् के प्रति धूप-दीप-पुष्प-तुलसी-आदि समर्पित करें।

३. नित्य आरती करें और भगवान् को गीता-रामायण-आदि सद्ग्रन्थ सुनाएँ।

४. भगवान् को अपना गृहस्वामी तथा स्वयं को उनका दास समझें।

५. प्रत्येक उत्सव एवं पर्व पर भगवान् को कुछ विशिष्ट भोग-पूजा अर्पित करें।

६. भगवान् के लिए यथासामर्थ्य श्रेष्ठतम वस्तु समर्पित करें।

७. भगवान् श्रीहरि सर्वेश्वर हैं। अत: किसी अन्य देवता को भगवान् से श्रेष्ठ

मानकर फलकामना से उनका पूजन करना भक्ति में व्याभिचार है।

८. पूजनोपरान्त भगवान् की आरती करके भगवान् के श्रीचरणों में केशव-आदि द्वादश नामों से तुलसी-समर्पण करें।

९. सायंकाल भगवान् की सन्निधि मे दीपक अवश्य जलाएँ।

१०. एक वैष्णव के लिए भगवान् को बिना भोग लगाए अन्न-जल ग्रहण करना वर्जित है।

११. एक वैष्णव को, भूत-प्रेत-तन्त्र-ओझा-तान्त्रिक-आदि के प्रपंचों में पड़कर, वैष्णवता के विपरीत कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

१२. ताँबे के पात्र में भगवान् को भोग नहीं लगाना चाहिए; क्योंकि उनमें रखे गए घी, दूध, मीठा, दही — शराब के समान अपवित्र हो जाते हैं। उन पात्रों का प्रयोग केवल जल रखने एवं स्नान करवाने हेतु ही करें।

१३. भगवान् विष्णु एवं उनके राम-कृष्ण-नृसिंह-आदि स्वरूपों की पूजा में अक्षत नहीं चढ़ना चाहिए।

१४. भगवान् एवं उनके अवतारों में भेदबुद्धि नहीं रखनी चाहिए; क्योंकि श्रीभगवान् के सभी स्वरूप नित्य एवं दिव्य कल्याणमय हैं।

१५. मानवमात्र हरि-नाम-जप में अधिकृत है, किन्तु सम्प्रदायोक्त मन्त्रों में केवल सभी हिन्दुओं (चारों वर्णों एवं आश्रमों) का ही अधिकार है। इनमें भी अपने कुल-परम्परा की आचार-मर्यादा से आपके यज्ञोपवीत-आदि संस्कार हुए हों, तो अच्छा; अन्यथा श्रीवैष्णव होने के लिए परम्परागत हिन्दु होना ही पर्याप्त है। हालाँकि अधिकृत होते हुए भी जिन लोगों के यज्ञोपवीत-आदि संस्कार यथासमय/यथायोग्य सम्पादित नहीं हुए, उन्हें अपने दीक्षागुरु (अथवा किन्हीं योग्य विद्वान् धर्मशास्त्री) के मार्गदर्शनानुसार प्रायश्चित्तपूर्वक अपने वैदिक

संस्कारों को सम्पन्न करवाना चाहिए।

१६. वैष्णवता का सम्बन्ध जीव के आन्तरिक स्वरूप से है, जबकि वर्ण-आश्रम का सम्बन्ध हमारे स्थूलशरीर से है। वर्णाश्रमधर्म से प्रत्यवायों (कर्मबन्धनों) का परिहार (शिथलीकरण) होता है, जबकि श्रीवैष्णवधर्म से भगवत्सामीप्यरूप परम प्रयोजन की सिद्धि में असन्दिग्धता आती है। अत: श्रीवैष्णवीदीक्षा एवं वर्णाश्रमधर्म — ये दोनों परस्पर भिन्न विषय हैं, अज्ञान-राग-द्वेष-आदि में फँसकर इन दोनों को मिलाना नहीं चाहिए।

१७. प्रत्येक श्रीवैष्णव की मुक्ति एवं भगवत्प्राप्ति हेतु सम्प्रदाय से प्राप्त होने वाले तीनों गुरुमन्त्र पर्याप्त हैं। अत: उन्हीं के प्रति साधकों को दृढ निष्ठा बनाए रखनी चाहिए। यही कारण है कि हमारे सम्प्रदाय में ***'अन्याश्रय'*** (अर्थात् भगवान् श्रीमन्नारायण के अतिरिक्त अन्य सभी देवताओं के मन्त्रों-उपासनाओं) का दृढतर निषेध किया गया है। नारायण के अतिरिक्त सभी जीव हैं, उनके अधिकार-प्रभाव-स्वभाव-आदि सब कुछ सीमित है। अत: उनकी उपासनाओं में न फँसकर हमें नारायणोन्मुख होना चाहिए।

१८. भले ही पंचदेवोपासना सामान्य लोगों के लिए कर्तव्य हो सकती है, परन्तु श्रीवैष्णवों को अपने सभी पुरुषार्थों की सिद्धि हेतु केवल श्रीमन्नारायण का ही ध्यान-चिन्तन-सेवन-भजन-आदि करना चाहिए (श्रीमद्भागवत २.३.१०)।

१९. श्रीवैष्णवों को चाहिए कि वे श्रीभगवान् के प्रति निवेदित की गई वस्तुओं (यथा माला-गन्ध-वस्त्र-अलंकार-भोग-आदि) को श्रद्धापूर्वक ग्रहण करे (श्रीमद्भागवत ११.६.४६) तथा अन्य देवताओं को निवेदित किए गए पदार्थों के प्रति उदासीन रहे।

२०. स्मरण रहे; प्रत्येक देवता वस्तुत: भगवान् की ही विभूति है, अत: हमें

श्रीमन्नारायण के प्रति दृढ निष्ठा रखते हुए भी अन्य देवताओं की निन्दा या तिरस्कार करने हेतु कोई स्वतन्त्रता अथवा अधिकार प्राप्त नहीं है।

२१. श्रीवैष्णवों को चाहिए कि अपने सन्ध्यावन्दन-आदि नित्यकर्मों में स्मृतियों एवं गुरुपरम्पराप्राप्त आचार को प्रमाण मानें, विवाह-आदि में अपने कुलाचार एवं सूत्रग्रन्थों को प्रमाण समझें; किन्तु भगवत्प्राप्ति हेतु सम्प्रदाय के ग्रन्थों में विशेष आस्था रखें। श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण (अथवा श्रीरामचरितमानस), विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण, श्रीमद्भगवद्गीता, प्रपन्नामृत, अर्थपंचक, तत्त्वत्रय, श्रीवचनभूषण आदि सद्ग्रन्थों का नित्य अनुसन्धान (स्वाध्याय) करना चाहिए। यदि योग्यता हो तो श्रीभाष्य, वेदार्थसंग्रह, गीताभाष्य, आदि का भी अनुशीलन करना चाहिए। तदतिरिक्त वरदवल्लभास्तोत्र सहित स्तोत्ररत्न (आलवन्दारस्तोत्र) एवं विष्णुसहस्रनाम का नित्य पाठ अवश्य करना चाहिए।

।। आहार-शुद्धि ।।

एक श्रीवैष्णव को चाहिए कि वह अपना आहार-विहार सदैव शुद्ध रखे; क्योंकि व्यक्ति जैसा आहार करता है, उसका व्यवहार भी वैसा ही होता है। सात्त्विक आहार करने पर सत्त्वगुण बढ़ता है। सत्त्वगुण ही ज्ञान, भाक्ति और सुख का मूल है। छान्दोग्योपनिषद् (६.२६.२) के अनुसार; आहार के शुद्ध होने पर सत्त्व शुद्ध होता है, तभी ध्रुव स्मृति-ज्ञान-भक्ति-आदि प्राप्त होते हैं। अत: शंखचक्रांकित श्रीवैष्णव को चाहिए कि वह :

१. प्याज़-लहसुन-गाजर-आदि निषिद्ध द्रव्यों का सेवन कदापि न करे।

२. जिसका आचरण अपने से श्रेष्ठ हो, उसके द्वारा निर्मित पवित्र आहार को ही ग्रहण करे।

३. अपने से निम्न आचार-विचार वाले व्यक्ति के द्वारा निर्मित भोजन को

स्वीकार न करे; भले ही वह कोई विद्वान्, पण्डित अथवा साधुवेशधारी ही क्यों न हो।

४. किसी व्यक्ति के संकोच में पड़कर अपने धर्म का त्याग न करे।

५. होटल-आदि में बनी वस्तुओं का सेवन कदापि न करे।

६. अवैष्णव तथा आचारहीन व्यक्ति के सम्मुख अथवा उनकी पंक्ति में कभी भोजन न करे।

७. किसी कारणवश विपरीत आचरण हो जाए; तो क्षौरकर्म (मुण्डन), यज्ञोपवीत-परिवर्तन, आचार्य के श्रीपादतीर्थ का सेवन तथा भगवान् को साष्टांग प्रणामपूर्वक क्षमायाचना करके; पुनः श्रीवैष्णवोचित विहित आचार का अत्यधिक दृढतापूर्वक अनुपालन करना चाहिए।

।। श्रीसम्प्रदाय का स्वरूप ।।

'सम्प्रदाय' शब्द का अर्थ है — अनादिकाल से अखण्डित रूप में चली आ रही गुरुपरम्परा। वह अनादिकालिक तभी हो सकती है, यदि उसके मूल अनादि परमेश्वर हों। तो हमारे श्रीसम्प्रदाय के मूल अनादिपुरुष पुरुषोत्तम भगवान् श्रीमहाविष्णु हैं। उन्हीं से भगवती लक्ष्मी को रहस्यत्रय (तीन गुरुमन्त्र) प्राप्त हुए तथा श्रीलक्ष्मीदेवी से उन मन्त्रों को भगवान् विष्णु के प्रमुख पार्षद (सेनापति) — श्रीविष्वक्सेनजी ने प्राप्त किया। कालान्तर में श्रीविष्वक्सेनजी ने इस लोक में प्रकट होकर श्रीशठकोपस्वामीजी को उन मन्त्रों का उपदेश किया; जिनसे क्रमशः इस धराधाम पर यह सम्प्रदाय-परम्परा प्रचलित हुई। इसके विशेष विवरण हेतु ***'श्रीमुनित्रयम्'*** नामक हमारे अन्य प्रकाशन को देखना चाहिए।

वस्तुतः श्रीमन्नारायण एवं भगवती महालक्ष्मी में अभेद है। फलतः हमारे

सम्प्रदाय में मन्त्रोपदेश का उपक्रम भगवती ***'श्री'*** (लक्ष्मीजी) से होने के कारण इस सम्प्रदाय को ***'श्रीसम्प्रदाय'*** कहा जाता है। इसका एकमात्र प्रयोजन है — भगवत्प्राप्ति के द्वारा सर्वानर्थनिवृत्ति एवं परमश्रेय (कर्मबन्धन से मुक्ति) की प्राप्ति। हमारी परम्परा की यह विशेषता है कि यहाँ वेद-शास्त्रों के सभी वचनों का पूर्णत: विनियोग एवं समन्वय करते हुए भक्ति-ज्ञान-कर्म में एक व्यवस्थित सामंजस्य स्थापित किया गया है। हमारी परम्परा में वर्णाश्रम-सम्मत लोकव्यवहार के साथ प्रपत्ति (शरणागति) — जिसमें सभी शास्त्रों का परम तात्पर्य अन्तर्निहित है — को अत्यन्त अपूर्व विधा से समन्वित किया गया है।

ध्यान रहे; सनातनधर्म (अथवा हिन्दुधर्म) का एकमात्र अर्थ है — वेद-शास्त्रों के आधार पर अमुक वर्ण-कुल में जन्मे व्यक्ति का अमुक देश, काल अथवा पात्र के प्रति करने योग्य व्यवहार (कृत्य)। संक्षेपत: कहें, तो वेद-आगम-शास्त्रों में वर्णित वर्ण-आश्रम-धर्म ही 'सनातनधर्म' कहलाता है।

।। आचार्य का स्वरूप ।।

श्रीसम्प्रदाय उक्त सनातनधर्म की परम्पराप्राप्त प्रयोगशाला है। इस प्रयोगशाला में स्वयं धर्मपालन करके अपने अपेक्षित शास्त्रोचित दायित्वों का निर्वहण करते हुए, धर्माचरण द्वारा दूसरों को भी जो धर्ममार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करता है; ऐसा मन्त्रज्ञ, मन्त्रनिष्ठ, सदाचारी, विष्णुभक्त, वेदज्ञ, वेद-गुरु-परमात्मा के प्रति परतन्त्र, परम्परागत, वीतराग, निर्लोभी, निष्काम, मोक्षशास्त्रों में निष्ठा रखने वाला भगवद्भक्त कुलीन ब्राह्मण (तत्रापि केवल पुरुष) ही ***'आचार्य'*** पद पर प्रतिष्ठित होने की योग्यता रखता है (पद्मपुराण ६.२२३.५०-५३)।

उक्त गुणों से सम्पन्न व्यक्ति भी तभी अन्य लोगों को दीक्षा देने का अधिकारी होता है, जब उसको उसके गुरु द्वारा इसका अधिकार एवं आदेश दिया जाए।

ब्राह्मण सभी वर्णों का गुरु (अर्थात् पूर्वज एवं श्रेष्ठ) है; अत: समग्र जनता उसके हाथ से भोजन लेने में, उसके मुख से उपदेश सुनने में, उसके चरणस्पर्श द्वारा आशीर्वाद प्राप्त करने में तथा समाज का नैसर्गिक पथप्रदर्शक होने से उसका अनुसरण करने में अधिकृत है। ब्राह्मणों में भी केवल पुरुषों के लिए यज्ञोपवीत की व्यवस्था शास्त्रों में कही गई है, अत: शास्त्रों में केवल ब्राह्मण पुरुषों हेतु ही ***'आचार्य'*** का पद सुरक्षित है। इस धराधाम में हुए हमारे सभी पूर्वाचार्य ब्राह्मण एवं पुरुष ही थे; अत: हमारे लिए भी इसी शिष्टाचार का अनुसरण एवं निर्वाह आवश्यक है।

।। श्रीवैष्णव का स्वरूप ।।

सामान्य संसारी मनुष्य मोह-माया से ग्रस्त है, अत: उन्हें कुल एवं समाज की परम्परा से प्राप्त रीति-रिवाज़ों के अनुसार ही अपनी जीवनयात्रा चलानी पड़ती है। अत: वे दूसरों से देख-सीखकर ही आचरण करते हैं। ऐसे मनुष्यों की संख्या अधिकतम है। उन्हें वास्तविक सत्संग नहीं मिलता तथा वे श्रेष्ठ ज्ञानमय ग्रन्थों को भी पढ़कर समझ नहीं पाते। इसलिए वे भूत-प्रेत अथवा क्षुद्र देवी-देवताओं में श्रद्धा रखकर उन्हें पूजते हैं। उनके हृदय में श्रद्धा-विश्वास अवश्य होता है, किन्तु दुर्भाग्यवश उनकी श्रद्धा के केन्द्रबिन्दु भगवान् श्रीमन्नारायण नहीं बन पाते। अत: ऐसे लोगों का श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय में दीक्षा लेकर सदाचारी (श्रीवैष्णव) बनना एक दुर्लभ कार्य है।

उपर्युक्त लोगों पर जब भगवत्कृपा होती है, तब उन भूत-प्रेतों को पूजने वाले मायाबद्ध मनुष्यों को श्रीवैष्णव भक्तों का यत्किंचित् सान्निध्य प्राप्त होता है। फिर उन श्रद्धालु श्रीवैष्णवों के सत्संग से उन्हें किन्हीं श्रीवैष्णव-सम्प्रदायाचार्य सद्गुरु के उपदेश सुनने को मिलते हैं। तब उन्हें यह भान हो जाता है कि अब

मुझे, इन क्षुद्र देवी-देवताओं अथवा भूत-प्रेतों के पूजन-भजन को छोड़कर, परमात्मा श्रीलक्ष्मीनारायण का शरणागत (श्रीवैष्णव) हो जाना चाहिए; ताकि मुझे जन्म-मरणरूप संसारचक्र से छुटकारा मिल जाए। इस पूरे प्रकरण में श्रीवैष्णवों के सत्संग का मुख्यतम महत्त्व है; जिसके कारण किसी अज्ञानी एवं विषयी जीव के अन्त:करण में भी श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय में दीक्षित होने की सद्भावना उदित होती है। फलत: वे दीक्षित होकर अपने मानव-जन्म को सफल बना लेते हैं। यह सौभाग्य भगवत्कृपा एवं भगवत्संकल्प से ही सध पाता है; परन्तु उस रहस्यपूर्ण, अतिसूक्ष्म एवं प्रभावशाली भगवत्कृपा को हर कोई समझ नहीं पाता।

इस प्रकार; दीक्षा के द्वारा प्राप्त होने वाली श्रीवैष्णवता अत्यन्त दुर्लभ है। उस दीक्षाप्राप्त व्यक्ति को ही हम श्रीवैष्णव-भागवत-महाभागवत-प्रपन्न-शरणागत-आदि नामों से जानते हैं तथा इनकी दिनचर्या और जीवनयात्रा के सदाचार को देखने वाले संसारी जीवों को भी श्रीवैष्णव बनने की प्रेरणा प्राप्त होती है। हमारे पूर्वाचार्यों ने महाभागवत (श्रीवैष्णव) के स्वरूप को इस प्रकार समझाया है :

अर्थ-पञ्चक-तत्त्वज्ञा ह्याकार-त्रय-संयुताः ।
पञ्च-संस्कार-सम्पन्नास्ते वै भागवताः स्मृताः ।।

जो अर्थपंचक के तत्त्वज्ञान को जानते हैं, अकारत्रय से युक्त हैं तथा पंचसंस्कार से सम्पन्न हैं; उन्हीं को ***'महाभागवत'*** (श्रीवैष्णव) कहते हैं।

इस श्लोक के तात्पर्य को विस्तरश: स्पष्ट करना अत्यन्त अनिवार्य है।

।। पंच-संस्कार ।।

नाम, पुण्ड्र, ताप, मन्त्र और याग — ये ***'पंच-संस्कार'*** कहलाते हैं। श्रीवैष्णव-दीक्षा के समय आचार्य द्वारा अपने प्रत्येक शिष्य को निम्नलिखित

पाँच वस्तुएँ 'पंचसंस्कार' के रूप में दे जाती हैं :

१. भगवद्दासत्व का सूचक एक नवीन आध्यात्मिक ***'नाम'***,

२. ***'ऊर्ध्वपुण्ड्र'*** (मध्य में श्रीमहालक्ष्मी से संयुक्त श्रीभगवान् के युगलचरणकमल के चिह्न; जिन्हें विगत पृष्ठों में वर्णित विधि के अनुसार अपने बारह अंगों पर प्रतिदिन धारण किया जाता है),

३. बाहुमूल में शंख-चक्र की ***'तप्त छाप'***,

४. रहस्यत्रय (दीक्षा में उपदिष्ट तीन ***'मन्त्र'*** — मूलमन्त्र, द्वयमन्त्र एवं चरममन्त्र), तथा

५. ***'याग'*** (अर्थात् दीक्षाकालिक एक क्रिया-विशेष; जिसमें आहुति-दानपूर्वक अग्निदेव की सन्निधि/साक्ष्य में शिष्य को मन्त्रोपदेश प्राप्त होता है)।

।। अकार-त्रय ।।

श्रीवैष्णव को यह मानना चाहिए कि मैं देह-इन्द्रिय-प्राण-मन-बुद्धि से विलक्षण — जीवात्मा हूँ तथा निम्नलिखित ***'अकारत्रय'*** (तीन 'अ') मेरे स्वरूप में अन्तर्निहित हैं :

१. ***'अनन्यार्ह-शेषत्व'*** अर्थात् मैं एकमात्र परमात्मा का शेष (दास/अंश) हूँ; तदतिरिक्त किसी (देवता-आदि) का नहीं। यही मेरा ***'स्वरूप-ज्ञान'*** है।

२. ***'अनन्यार्ह-भोग्यत्व'*** अर्थात् मैं एकमात्र परमात्मा का भोग्य (उनकी सेवा-सुश्रूषा का अधिकारी) हूँ। यही मेरा ***'परम-पुरुषार्थ-ज्ञान'*** है।

३. ***'अनन्यार्ह-शरणत्व'*** अर्थात् परमात्मा ही मेरे रक्षक/उद्धारक हैं तथा मैं सतत उनकी शरण में हूँ। यही मेरा ***'उपाय-ज्ञान'*** है।

अपने दीक्षागुरु एवं अन्य श्रीवैष्णवों के श्रीमुख से उक्त तीनों अकारों के श्रवण द्वारा इनका निश्चित ज्ञान एवं तदनन्तर अनुभव प्राप्त करना चाहिए।

कारण कि अज्ञानी सांसारिक प्राणी, परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते; किन्तु उक्त अकारत्रय के ज्ञाता श्रीवैष्णवों के लिए मुक्ति दुर्लभ नहीं है।

* अर्थपंचक-रसरहस्य *

स्वस्वरूप, परस्वरूप, पुरुषार्थस्वरूप, उपायस्वरूप एवं विरोधिस्वरूप — इन पाँच अर्थों (प्रतिपाद्य विषयों) के समूह को ***'अर्थपंचक'*** कहते हैं। उक्त पाँचों के पुन: पाँच-पाँच प्रभेद हो जाते हैं। फलत: कुल ५ × ५ = २५ अर्थ हैं; जो प्रत्येक श्रीवैष्णव (भगवद्भक्त, आस्तिक चिन्तक) के लिए सतत चिन्तनीय एवं अनुसन्धेय हैं। पाठकों की सुविधा हेतु अब इनके रसरहस्य (तात्त्विक विवेचन) को अभिव्यक्त किया जा रहा है।

।। १. स्वस्वरूप-विमर्श ।।

'स्व' का अर्थ है — ***जीवात्मा*** (प्रापक); जो कि देह, इन्द्रियों, मन, प्राण एवं बुद्धि से ***विलक्षण*** तथा ***अजड*** (चेतन = विषयों के ज्ञान को प्राप्त करने की योग्यता रखने वाला) एवं स्वरूपत: ***आनन्दमय*** (दु:खरहित) और विकारशून्य है। वह ***नित्य*** (तीनों कालों में अविनाशी; उत्पत्ति-विनाश-रहित), ***अणु***-जितने आकार वाला, ***अव्यक्त*** (इन्द्रियों के लिए अग्राह्य), ***अचिन्त्य*** (मन-बुद्धि से परे) तथा कर्मफलदाता ईश्वर के ***परतन्त्र*** रहने वाला उनका ***अंश*** ही है। संख्यादृष्टि से जीव ***अनन्त*** हैं तथ परस्पर एक-दूसरे से ***भिन्न*** भी हैं। उन्हें पाँच प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है — नित्य, मुक्त, बद्ध, केवल और मुमुक्षु।

१.१. जो परमात्मा की सेवा में सदा-सर्वदा विद्यमान रहते हैं, उन्हें ***'नित्यजीव'*** कहते हैं। वे सभी कर्मबन्धन से रहित, सर्वज्ञ, अपनी इच्छा से इस धराधाम पर

अवतार लेने में समर्थ तथा विविध ईश्वरीय शक्तियों से सम्पन्न, अत्यन्त कृपालु, परमकल्याणमय धर्म के उपदेष्टा, सभी भक्तों के रक्षक तथा भगवत्सेवा में सतत तल्लीन रहने वाले होते हैं। श्रीमहालक्ष्मी-श्रीराधा-श्रीसीता-श्रीहनुमान्-श्रीशेष-आदि पार्षदों (सेवकों) के सहित श्रीभगवान् के शंख-चक्र-आदि आयुध एवं कुण्डल-हार-मणि-पुष्प-आदि शृंगार — ये सभी नित्यजीवों के उदाहरण हैं।

१.२. समस्त सांसारिक पदार्थों के प्रति वैराग्य रखते हुए, सद्गुरुकृपा से भगवच्छरणागत श्रीवैष्णव बनकर, भगवत्परिचर्या (शास्त्रोचित भगवदुपासना) करते हुए, देहत्याग के पश्चात् मायाजनित जन्म-मृत्यु-परम्परा से सदा-सर्वदा के लिए मुक्त होकर भगवान् के परमधाम में नित्यजीवों का सत्संग करने वाले जीवों को ***'मुक्त'*** कहते हैं।

१.३. जो जीव भगवद्विमुख होकर सांसारिक पदार्थों में अनुरक्त हैं तथा कर्मबन्धन (अपने पाप-पुण्यों के भोग हेतु विवश) एवं जन्म-मृत्यु-शृंखला में बँधे हुए हैं; उन्हें ***'बद्ध'*** कहते हैं। इनके पाप-पुण्यों के तारतम्य से इनका वास्तविक स्वरूप एवं ज्ञान क्रमशः संकुचित एवं विकसित होता रहता है। ये सांसारिक विषयों के रसिक होने से सदा दुःखों में निमग्न रहते हैं तथा सुखभोग के इच्छुक होने से इन्हीं को ***'बुभुक्षु'*** कहा जाता है। इनमें कुछ अर्थ एवं काम के परायण (अवलम्बी) होते हैं तथा कुछ धर्म के (धर्म-आदि की व्याख्या आगे ३.१-३ में देखें)। धर्मपरायणों में भी कुछ लोग भगवान् से भोगों को माँगते हैं, जबकि अन्य लोग भोगप्राप्ति हेतु अन्य देवताओं की उपासना करते हैं। कुछ बद्धजीव ऐसे भी होते हैं, जिन्हें भगवान् ने इस विश्वसृष्टि की समूची व्यवस्था सौंप रखी है। ऐसे लोग (ब्रह्मा-इन्द्र-आदि) ***'आधिकारिक'*** कहलाते हैं।

१.४. आजीवन अनुष्ठित ज्ञानयोग के फलस्वरूप देहत्याग के पश्चात् इस

संसार से अतीत भगवद्धाम की सीमा पर ***'कैवल्य'*** (अर्थात् किसी एकान्तिक अप्राकृत स्थान) में अपने स्वरूपभूत आनन्द का अनुभव करते हुए, दिव्य भगवदीय परमानन्द के साक्षात्कार से विहीन रहने वाले तापत्रयरहित जीवों को ***'केवल'*** कहते हैं। इनके लिए अपनी आत्मा के अतिरिक्त सभी पदार्थों में असह्य दु:ख का अनुभव होता है।

१.५. संसारबन्धन से सर्वविध मोक्ष (छुटकारा) चाहने वाले, सद्गुरुपरम्परा से श्रीवैष्णवदीक्षा को ग्रहणकर सत्संग करके अपने शरीर को भगवत्प्राप्ति का साधन बनाने वाले तथा शरीरत्याग के पश्चात् परमात्मा की नित्यसन्निधि में पहुँचकर उनके साक्षात्कारजनित दिव्य आनन्द को प्राप्त करने के इच्छुक जीव ***'मुमुक्षु'*** कहलाते हैं। उन्हीं के पुन: दो प्रभेद हो जाते हैं : आर्त एवं दृप्त। जो मुमुक्षु, सभी सांसारिक पदार्थों में पूर्ण वैराग्य रखकर, अपने श्रीवैष्णवोचित धर्मों का निर्वाह करते हुए भगवत्प्राप्ति हेतु सदैव अत्यन्त व्याकुल रहते हैं; उन्हें *'आर्तमुमुक्षु'* कहते हैं। जबकि संसार के प्रति जिनका वैराग्य अतीव मन्द होता है, उन्हें ***'दृप्तमुमुक्षु'*** कहते हैं।

।। २. परस्वरूप-विमर्श ।।

'पर' शब्द से ***परमात्मा*** (प्राप्य) अभिप्रेत है। वह सभी ***प्राकृत*** (मायाजनित) गुण-दोषों से सदा ***रहित***, ज्ञान-शक्ति-बल-तेज-आदि समस्त ***दिव्य*** (अप्राकृत) गुणों से सदा ***युक्त***, ***अनन्त*** (अविनाशी), सम्पूर्ण जगत् के उत्पत्ति-स्थिति-संहार का ***स्वतन्त्र निर्वाहक***, ***ज्ञान-आनन्दमय स्वरूप*** वाला **चेतन** है; जो जीवों के धर्म-आदि पुरुषार्थों को सिद्धकर उन्हें कृतार्थ करता है। वह ***नित्य*** (सदा, सर्वदा एवं सर्वत्र) है, अत: सभी प्राणियों एवं प्रकृति में उनका ***अन्तर्यामी*** और ***नियन्ता*** बनकर व्याप्त है। उसके पाँच स्वरूप समझने चाहिए

— पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार।

२.१. अनन्त सौन्दर्य-सौशील्य-शक्ति-ऐश्वर्य-आदि के सागर, सर्वनियामक, नित्य, सत्य, अनन्तकोटि-ब्रह्माण्ड-नायक, सर्वविलक्षण (सर्वोत्कृष्ट) प्रकृति से अतीत परमधाम (वैकुण्ठ/साकेत/गोलोक/त्रिपादविभूति/नित्यविभूति) में सदैव नित्यजीवों द्वारा सेवित तथा मुक्तजीवों के लिए प्राप्य, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, दिव्य-मंगलमय श्रीविग्रह वाले, सर्वावतारी परब्रह्म श्रीमहाविष्णु ही ***'पर'*** कहलाते हैं। वे ही इस जगत् के निमित्तकारण (निर्माता) एवं उपादानकारण (निर्माण-सामग्री) हैं। प्रकृति एवं सभी जीव उन्हीं के आश्रित (शेष/अंश) हैं तथा उन्हीं की भक्ति एवं प्रपत्ति से मोक्षप्राप्ति सम्भव है।

२.२. समूचे जगत् का उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने वाले 'प्रद्युम्न' (अपने ऐश्वर्य एवं वीर्य से क्रमशः जगत्स्रष्टा एवं धर्मविस्तारक), 'अनिरुद्ध' (अपनी शक्ति एवं तेज से जगत् के क्रमशः रक्षक एवं प्रकाशक) और 'संकर्षण' (अपने ज्ञान एवं बल से क्रमशः शास्त्रप्रवर्तक एवं जगत्संहारक) नामक पुराणप्रतिपादित भगवदीय अंश, जो मूलतः 'पर' (उक्त तीनों के गुणों से पूर्णतः युक्त 'वासुदेव' = महाविष्णु) द्वारा नियन्त्रित रहते हैं, ही ***'व्यूह'*** कहलाते हैं। इन्हीं से केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ एवं दामोदर — ये ***'अवान्तर व्यूह'*** प्रकट होते हैं; जिनके प्रतीकभूत बारह ऊर्ध्वपुण्ड्रों को भक्तलोग अपने देह पर धारण करते हैं।

२.३. पापियों के विनाश, साधुओं की रक्षा, धर्म की संस्थापना एवं श्रीवैष्णवों पर अनुग्रह करने हेतु श्रीराम-कृष्ण-नृंसिह-वामन-मत्स्य-आदि रूपों में अवतीर्ण होने पर वे (उपर्युक्त) 'पर' ही ***'विभव'*** कहलाते हैं; जो कि मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं : १. ***मुख्य*** ('पर' के पूर्ण तेज से युक्त, सर्वपुरुषार्थ-साधक; यथा

श्रीराम-कृष्ण-आदि), २. ***शक्ति*** (साधुपरित्राता, देवकार्यसाधक; यथा श्रीनृसिंह-वामन-आदि), ३. ***आवेश*** (धर्म के प्रचार-संरक्षण हेतु किसी विशिष्ट पुरुष में भगवदीय स्वरूप या शक्ति का अल्पकालिक आविर्भाव; यथा केवल वेदविभाग करते समय ही श्रीवेदव्यासजी भगवदावेशयुक्त थे) एवं ४. ***गौण*** (न्यून ऐश्वर्यभाव के प्रदर्शक, अल्प-भगवत्तेजयुक्त विभूतियाँ; यथा सनक-सनन्दन-आदि)। किन्तु ध्यान रहे; उक्त सभी प्रकार के अवतार समानत: पूज्य हैं, इनमें भेदभावना नहीं रखनी चाहिए।

२.४. शरीरी (अंगुष्ठमात्र आकार वाले) तथा अशरीरी (अदृष्ट) रूपों से समस्त चराचर प्राणिवर्ग में अन्त:प्रविष्ट होकर उनका नियमन करने पर वे श्रीभगवान् ***'अन्तर्यामी'*** कहलाते हैं। उपर्युक्त दोनों में से; ***'शरीरी अन्तर्यामी'*** श्रीवैष्णवों को समाधि में अपने दर्शन द्वारा सुखी करते हैं। जबकि ***'अशरीरी अन्तर्यामी'*** का अनुभव किसी को नहीं हो पाता।

२.५. ***'अर्चावतार'*** परमात्मा का पंचम स्वरूप है; जो 'सेवामूर्ति' भी कहलाता है तथा चार प्रकार का होता है : स्वयम्भू, दिव्य, सिद्ध एवं मानुष। श्रीवेंकटेश-श्रीबदरीनाथ-श्रीद्वारकानाथ-श्रीजगन्नाथ-श्रीरंगनाथ-श्रीशालिग्राम-आदि ***'स्वयम्भू-विग्रह'*** किसी प्राणी के द्वारा निर्मित नहीं हैं; बल्कि भगवत्प्रेरणा से स्वयं ही श्रीवैष्णवों को सुख देने हेतु प्रकटित हैं। जबकि देवताओं द्वारा स्थापित सेवामूर्ति ***'दिव्य-विग्रह'*** तथा सिद्ध महर्षियों एवं योगियों द्वारा स्थापित अर्चाविग्रह ***'सिद्ध'*** कहलाते हैं। हम-आप भक्तजनों द्वारा नगर-ग्रामों के मन्दिरों में शास्त्रीय पद्धति से विधिपूर्वक जिन श्रीविग्रहों को प्राणप्रतिष्ठित किया जाता है, वे ***'मानुष'*** कहलाते हैं।

परमात्मा के 'पर' नामक स्वरूप का सम्पूर्ण अलौकिक तेज इन अर्चावतारों

में प्रतिष्ठित रहता है, अत: इनकी सेवा-समर्चा श्रद्धापूर्वक करनी चाहिए। साधक का आध्यात्मिक उत्थान होते ही उसे इन सेवामूर्तियों में भगवत्तेजोदर्शन-संवाद-आदि रूप साक्षात्कार होने लगता है। ध्यान रहे; अर्चावतारूप भगवान्, भोजन-शयन-संरक्षण-आदि क्रियाओं की दृष्टि से अपने अर्चक के सर्वदा परतन्त्र-सदृश रहते हैं; न कि अपने अन्य चार रूपों के समान स्वतन्त्र।

।। ३. पुरुषार्थ-स्वरूप-विमर्श ।।

'अर्थ' का अभिप्राय है — प्रयोजन अथवा लक्ष्य; जबकि 'पुरुष' शब्द, मनुष्य का वाचक है। एतावता प्रत्येक मनुष्य का जो लक्ष्यभूत अभीष्ट है, उसी को ***'पुरुषार्थ'*** (फल) कहते हैं। यह पाँच प्रकार का होता है — १. धर्म, २. अर्थ, ३. काम, ४. कैवल्य (आत्मानुभव-मोक्ष) एवं ५. भगवत्प्राप्ति (परमात्मानुभव-मोक्ष)।

३.१. परमात्मा ने पुण्यवान् बद्धजीवों को पुरुषार्थ-सिद्धि करवाने हेतु उन्हें पूर्वकर्मानुसार मनुष्य-शरीर प्रदान किया है तथा उनके व्यवस्थित जीवनयापन हेतु ***'वेद'*** नामक एक हितानुशासन को भी प्रकट किया है। वेद में वर्णित ***'विहित'*** (प्रभुप्राप्तिरूप आत्मकल्याण हेतु स्वाधिकारानुरूप करने योग्य पुण्यजनक) कर्मों के अनुपालन तथा ***'निषिद्ध'*** (प्रभुप्राप्ति में बाधक एवं पापजनक) कर्मों के त्याग सबके लिए निश्चित ही विचारणीय एवं कर्तव्य है। फलत: वेदों में विधिवाक्य के रूप में वर्णित विहित कर्म ही 'धर्म' कहलाते हैं; जो कि दो प्रकार के होते हैं : सामान्य एवं विशेष।

'सामान्य-धर्म' उन सद्गुणों को कहते हैं, जो प्रत्येक प्राणी में अवश्यमेव होने ही चाहिए; भले ही वह किसी वर्ण-जाति-पन्थ-आदि का क्यों न हो। राजर्षि मनु ने प्रमुखत: दस सद्गुणों (सामान्य-धर्मों) को उल्लिखित किया है :

धैर्य, क्षमा, इन्द्रिय-दमन, चोरी न करना, बाह्याभ्यन्तर पवित्रता, मनो-निग्रह, सात्त्विक बुद्धि, विद्या, सत्यनिष्ठा एवं क्रोधराहित्य (मनु.६.९२)।

'विशेषधर्म' का तात्पर्य है : प्राणी ने ब्राह्मण-क्षत्रिय-आदि जिस वर्ण में जन्म लिया है, उसके अनुरूप शास्त्रोक्त कर्तव्यों का निर्वाह करना (गीता १८.४१-४८)। फलत: जिन संस्कारों एवं आश्रमों में उसका अधिकार वेदसिद्ध है, तद्विषयक ज्ञान को अपने आचार्यों से प्राप्त करके उन सभी संस्कारों एवं आश्रमों का समुचित आयु में अनुष्ठान/प्रवेश ही 'विशेषधर्म' कहलाता है। संक्षेपत: कहें तो; अमुक देश, काल अथवा पात्र के प्रति हमारा जो वेदोक्त कर्तव्य है; उसी को 'विशेषधर्म' कहते हैं।

ध्यातव्य है कि वैष्णव-सिद्धान्त के अनुसार; विशेषधर्म तीन प्रकार का होता है : १. ***नित्य*** (दैनिक स्नान-तिलक-सन्ध्या-तर्पण-पूजा-अर्चन-जप-आदि), २. ***नैमित्तिक*** (विशिष्ट प्रसंगों पर किए जाने वाले कर्म; जैसे एकादशी-पर्व-महोत्सव-श्राद्ध-ग्रहणकालिक अनुष्ठान-चातुर्मास्य-आदि) एवं ३. ***काम्य*** (सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति हेतु किए जाने वाले विशेष प्रयत्न)। यद्यपि सकामोपासनारूप काम्यकर्म, सनातनधर्म में निषिद्ध नहीं है (गीता ७.१६); तथापि यह स्मरण रखना चाहिए कि इनके अनुष्ठान से साधक पुन: संसार (कर्मबन्धन) में फँसना ही पड़ता है। अत: श्रीवैष्णवों को काम्यकर्म नहीं करने चाहिए।

ध्यान रह; यदि पूर्वोक्त दस प्रमुख सामान्यधर्म किसी मनुष्य में यथायोग्य उपलब्ध होंगे, तब ही उसका विशेषधर्म फलीभूत होगा; अन्यथा नहीं। अत: प्रयास करना चाहिए कि सत्संग-आदि के प्रभाव से प्राणी के अन्त:करण में उन सभी सामान्य-धर्मों की प्रतिष्ठा होवे। धर्म के प्रभाव से ही मनुष्य, पशु-आदि से विलक्षण बनता है; अत: उसको दृढ़तापूर्वक यथोचित धर्म का पालन करना

चाहिए।

३.२-३. हमारे पास उपलब्ध वे समस्त उपयोगी एवं धर्मानुकूल संसाधन, जिनसे हम अपनी इच्छाओं को पूर्ण कर सकते हैं, ***'अर्थ'*** कहलाते हैं। जबकि अर्थ के बल पर पूर्ण हो सकने वाली हमारी समस्त इच्छाएँ एवं अभिलाषाएँ ही ***'काम'*** कहलाती हैं। काम के भी पुन: दो भेद होते हैं — ***'ऐहिक'*** (इस लोक में भोगने योग्य) एवं ***'पारलौकिक'*** (परलोक में भोगने योग्य)। ध्यान रहे; सामान्य प्राणियों के लिए पैसा-परिवार-सम्पत्ति-आदि अर्थ हैं तथा उनकी कामनाएँ भी इन सभी सांसारिक पदार्थों तक ही सीमित रहती हैं। किन्तु श्रीवैष्णवों के लिए परमार्थरूप श्रीभगवान् ही एकमात्र काम (इच्छित पदार्थ = साध्य/उपेय) एवं अर्थ (साधन/उपाय) हैं। अत: उन्हें, सांसारिक अर्थ व काम का विचार न करके, श्रीभगवान् के प्रति ही अपना सर्वस्व समर्पित कर देना चाहिए। वस्तुत: कामनाओं का मूल रजोगुण है तथा स्ववर्णाश्रमानुरूप नित्य-नैमित्तिक कर्मों एवं भगवदुपासना के द्वारा चित्तशुद्धि में रजोगुण-संस्कार स्वत: शिथिल होते जाते हैं। अत: श्रीवैष्णवों को निष्काम धर्माचरण करना चाहिए।

३.४-५. कुछ साधकों का लक्ष्य होता है — सदा-सर्वदा के लिए सभी सांसारिक सुख-दु:खमय संस्कारों से छूटकर, अपने आत्मस्वरूप के ज्ञान के माध्यम से जन्ममरणरहित ***'कैवल्य'*** (आत्मानुभवपरक मुक्तिदशा) में स्थित होना। यद्यपि यह भी मोक्ष (संसारभाव से मुक्ति) का ही एक प्रकार है; तथापि, श्रीवैष्णवाचार्यों के अनुसार, यह अत्यन्त अल्प-फलदायी है। कारण कि जीव का स्वरूपभूत आनन्द, परमात्मा के निरतिशय आनन्द के समक्ष ठीक वैसा ही है; जैसा कि किसी समुद्र के समक्ष उसका एक बिन्दुमात्र। अत: एक श्रीवैष्णव का लक्ष्य होना चाहिए — देहत्याग के पश्चात् श्रीभगवान् के अप्राकृतिक

परमधाम (वैकुण्ठ) में जाकर उनके सुन्दरतम श्रीविग्रह का दर्शन-सेवन-आदि करना। यह ***'भगवत्प्राप्ति'*** ही श्रीवैष्णवों का परमपुरुषार्थ है।

सुविज्ञ पाठकगण कृपया उस महान् सुख की कल्पना कीजिए। सांसारिक कर्मबन्धन से छूटकर मुक्तिदशा को प्राप्त हुआ जीवात्मा अपने सूक्ष्मशरीर के माध्यम से परमधाम तक पहुँचकर वहाँ दिव्यदेह को प्राप्त करता है तथा अपने स्वामी परमेश्वर के समक्ष पहुँचकर अपना परिचय देता है : *'हे प्रभो! मैं आपश्री का ही एक अंश एवं दास हूँ, आप मुझको स्वीकार करें।'* तब श्रीभगवान् उसका आलिंगन करके उसको, सतत अपनी कृपामयी सन्निधि में रखते हुए, पुन: कभी अपने से वियुक्त नहीं होने देते। निश्चित ही उक्त सुख के साथ कैवल्यदशा अथवा किसी सांसारिक अभ्युदय की तुलना करना हास्यास्पद है। फलत: वस्तुदृष्टि से विचार करें, तो श्रीवैष्णवों के लिए फल पाँच नहीं; अपितु एक ही है — भगवत्प्राप्ति।

।। ४. उपाय-स्वरूप-विमर्श ।।

'उपाय' का अर्थ है — पूर्वोक्त पुरुषार्थों की उपलब्धि का साधन। समस्त पुरुषार्थों की सिद्धि हेतु ***'वेद'*** नामक हितानुशासन परमात्मा द्वारा प्रकट किया गया; जिसमें कर्म, ज्ञान एवं भक्ति — यही तीन मुख्य प्रतिपाद्य विषय (काण्ड) हैं। भगवान् की शरणागति (प्रपत्ति) प्राप्त होने में ही इन तीनों की सफलता है। स्वयं आचार्य (सद्गुरु) ही साधक को इन सभी विषयों का बोध करवाते हैं। अत: उनके प्रति श्रद्धा एवं स्वयं को उनका चरणाश्रित मानने की सात्त्विक भावना सभी श्रीवैष्णवों में अवश्यमेव होनी चाहिए। इस प्रकार; उपाय के पाँच भेद बन जाते हैं — कर्म, ज्ञान, भक्ति, शरणागति एवं आचार्याभिमान। इनमें;

४.१. पीछे ***'कर्म'*** के तीन प्रकार कहे गए हैं — नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य;

जिनमें पहले दो से साधक का चित्त शुद्ध होता है, जबकि तीसरे से संसारबन्धन एवं भगवद्विमुखता आती है। अत: श्रीवैष्णव को श्रीभगवान् के प्रति पूर्णत: शरणापन्न होकर नित्य एवं नैमित्तिक कर्म करने चाहिए; जबकि काम्यकर्मों को सर्वथा त्याग देना चाहिए।

४.२. ***'ज्ञान'*** चार प्रकार का होता है : अज्ञान, सामान्यज्ञान, विशेषज्ञान एवं अनुभवज्ञान। नाम एवं रूपों से युक्त सभी अनुभूयमान सांसारिक पदार्थों का ज्ञान ही ***'सामान्यज्ञान'*** कहलाता है। जबकि जीव-माया-परमेश्वर-गुरुपरम्परा-आदि के स्वरूप एवं महिमा का साधारण ज्ञान ही ***'विशेषज्ञान'*** तथा अनुभूत हो चुका यथार्थ (तात्त्विक) ज्ञान ही ***'अनुभवज्ञान'*** कहलाता है। विशेष एवं अनुभव ज्ञानों में भेद को समझने हेतु उदाहरण : ग्रन्थों को पढ़ने के बाद, किसी स्वार्थ या अभिमान के वशीभूत होकर, ऊपर-ऊपर से स्वयं को भगवान् का दास बताना, जगत् को अनित्य बताना इत्यादि; न कि मानना ही विशेषज्ञान है। जबकि श्रीहरिगुरुकृपा से, स्वयं को वस्तुत: भगवद्दास मानते हुए, इस अनित्य संसार के प्रति वितृष्णा रखकर जीवनयापन करना ही अनुभवज्ञान है। इन सभी से रहित होना ही ***'अज्ञान'*** कहलाता है।

४.३. ***'भक्ति'*** का अर्थ है — उपर्युक्त कर्म एवं ज्ञान योगों में प्रवीण होकर, अपने अधिकार की सीमा में शास्त्रों का अध्ययन करके, अपने मन-इन्द्रिय-आदि को वश में रखते हुए, अनित्य संसार के प्रति विरक्त होकर, नित्य परमात्मा के प्रति आसक्त होना। श्रीमद्भागवत (७.५.२३) में इसके नौ प्रकार बताए गए हैं : १. ***श्रवण*** = भगवान् की कथा एवं महिमा को सुनना, २. ***कीर्तन***, ३. ***विष्णुस्मरण*** = अपने सांसारिक कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए भगवान् का स्मरण करते रहना, ४. ***पादसेवन*** = चरणसेवापूर्वक भगवान् का

चरणामृत लेना, ५. ***अर्चन*** = श्रीभगवान् के अर्चावतार की यथासामर्थ्य शास्त्रोक्त औपचारिक पूजा, ६. ***वन्दन*** = प्रभु का विविध स्तोत्रपाठों द्वारा अभिनन्दन करना, ७. ***दास्यभाव*** = स्वयं को एकमात्र परमात्मा का दास मानते हुए भगवत्प्रोक्त मर्यादानुसार जीवनयापन करना, ८. ***सख्यभाव*** = एकमात्र भगवान् को ही अपना परम सुहृद्/सम्बन्धी मानना तथा ९. ***आत्म-निवेदन*** = अपने पास उपलब्ध सभी सामग्रियों एवं संसाधनों को एकमात्र परमेश्वर श्रीमहाविष्णु की सम्पत्ति मानकर उन्हीं की सेवा में उन सभी का विनियोग करना।

४.४. *'शरणागति'* सभी उपायों में महत्त्वपूर्णतम है। इसी को ***'प्रपत्ति'*** अथवा ***'न्यासविद्या'*** भी कहते हैं। वस्तुत: पूर्वोक्त सभी साधन अत्यन्त कठिन, अधिकारी की योग्यता का विचार करने वाले तथा परस्पर सापेक्ष हैं। किन्तु शरणागति में प्राणीमात्र का सदा-सर्वदा अधिकार है। *'श्रीभगवान् ही शरण्य (उपेय) हैं तथा वे ही अपनी प्राप्ति के उपाय भी हैं'* — यही मानते हुए स्वयं को मन-वाणी-कर्म से श्रीभगवान् के प्रति समर्पित कर देना तथा उनकी सभी आज्ञाओं का निष्ठापूर्वक यथासामर्थ्य अनुपालन करना। वस्तुत: यह आत्मनिवेदन-भक्ति का ही विस्तार है। प्रत्येक प्राणी जगत् में विद्यमान द्वन्द्वमय दु:खों से ग्रस्त है तथा जगत्पति श्रीभगवान् के अतिरिक्त कोई उसे दु:खनिवृत्ति नहीं दिला सकता। अन्य देवता-आदि भी श्रीभगवान् के बल पर ही दूसरे लोगों की अभीष्ट-सिद्धि करते हैं (गीता ७.२२)। एतावता, श्रीभगवान् के *''सभी प्रपंचों को छोड़कर तुम मेरी शरण में आ जाओ! मैं तुम्हें सभी पापों और चिन्ताओं से मुक्त करके अपना परमपद प्रदान करूँगा''* (गीता १८.६६) इत्यादि वचनों पर विश्वास रखते हुए, सभी प्रपंचों को त्यागकर सीधे सर्वावतारी श्रीप्रभु के प्रति

पूर्णत: समर्पित हो जाना ही श्रेयस्कर है।

उपर्युक्त भगवच्छरणागत दो प्रकार के होते हैं : आर्त्तशरणागत एवं दृप्तशरणागत। जो श्रीवैष्णव, संसारभाव से आर्त्त (प्रभावित, सन्तप्त) होकर यथाशीघ्र तापनिवृत्ति की इच्छा रखकर, परमानन्दस्वरूप भगवान् के अतिरिक्त के प्रति पूर्णत: समर्पित हो जाते हैं; वे ***'आर्त्तशरणागत'*** कहलाते हैं। जबकि जिनकी शरणागति का प्रयोजन तापनिवृत्ति नहीं होता, वे सभी ***'दृप्तशरणागत'*** की कोटि में गणित होते हैं। ध्यान रहे; जीवात्मा अन्त:करण के बल पर सांसारिक पदार्थों का भोग करता है; जिनसे प्राप्त होने वाली अनुकूलताएँ ***'सुख'*** तथा प्रतिकूलताएँ ***'दु:ख'*** कहलाती हैं। दु:खों के तीन भेद प्रसिद्ध हैं : १. ***दैहिक*** (व्यक्तिगत स्तर पर अपने शरीर-मन-इन्द्रिय-आदि से सम्बद्ध दु:ख; यथा शोक-ज्वर-आदि), २. ***दैविक*** (अज्ञात कारणों से प्राप्त दु:ख; यथा शीत-वृष्टि-आदि) तथा ३. ***भौतिक*** (अन्य भूतों/प्राणियों से प्राप्त दु:ख; यथा हिंसा-आदि)। उक्त तीन प्रतिकूलताओं से ग्रस्त होकर अपनी दु:खनिवृत्ति चाहने वाले आर्त्तशरणागत 'प्रतिकूलभोगार्त्त' कहलाते हैं। जबकि जो भगवत्स्वरूप को जान चुके हैं, वे श्रीभगवान् का साक्षात्कार करने में अपने प्रति प्राप्त होने वाले सुखों को भी बाधक समझते हैं। ऐसे श्रेष्ठतम शरणागत ***'अनुकूलभोगार्त्त'*** कहलाते हैं। सभी प्राणियों में अनुकूल-भोगार्त्तों की स्थिति सर्वश्रेष्ठ मान्य है; क्योंकि उन्हें छहों प्रकार की शरणागति सिद्ध हो चुकी होती है। लक्ष्मीतन्त्र (१७.५९-६१) में वर्णित शरणागति के छ: प्रकार निम्नलिखित हैं : १. ***आनुकूल्य-संकल्प*** (सदा भगवान् के अनुकूल/रुचिकर आचरण एवं विचार करना), २. ***प्रातिकूल्य-विवर्जन*** (भगवान् के प्रतिकूल/अरुचिकर कर्मों का तत्परतापूर्वक त्याग करना), ३. ***रक्षा-विश्वास*** (*'पात्रता का विचार किए बिना भगवान् मेरी रक्षा अवश्य*

करेंगे' — ऐसा विश्वास रखना), ४. ***गोप्तृत्व-वरण*** (एकमात्र भगवान् को ही अपना रक्षक, आश्रय एवं प्राणधन मानना), ५. ***आत्मनिक्षेप*** (*'मुझ सहित मेरा सर्वस्व भगवान् के प्रति समर्पित होने योग्य है'* — ऐसा चिन्तन करना) तथा ६. ***कार्पण्य*** (*'मैं किसी भी प्रकार की कोई योग्यता नहीं रखता'* — यह सदा स्वीकार करना)। इन छहों प्रकार की शरणागति सिद्ध हो जाने पर भगवान्, तत्परतापूर्वक अपनी प्रतिज्ञाओं (गीता १८.६६, वाल्मीकिरामायण ६.१८.३३ इत्यादि) का निर्वाह करते हुए, अपने शरणागत को पूर्णत: निष्पाप एवं दु:खरहित बना देते हैं।

४.५. सभी उपायों में अन्तिम है — ***'आचार्याभिमान'***। वस्तुत: पूर्वोक्त सभी साधनों का स्वरूप बिना गुरुकृपा के ज्ञात नहीं हो सकता। एतावता सभी श्रीवैष्णव साधकों को अपने सद्गुरुदेव के मार्गदर्शन में रहकर किसी एक उपाय का आलम्बन लेना चाहिए। गुरुकृपा महती बलवती होती है। गुरुकृपा एवं गुरुपरम्परा (सम्प्रदाय) के बल से ही साधक की भगवत्प्राप्ति सुनिश्चित हो सकती है। समर्पित शिष्य को देखकर जब उसके कल्याण के इच्छुक गुरुदेव, भगवान् के प्रति उस शिष्य के कल्याण हेतु अनुरोध करते हैं; तो उस शिष्य का कल्याण करने हेतु भगवान् भी विवश हो जाते हैं। अत: सभी शिष्यों के लिए अनिवार्य है कि वे दृढ़तापूर्वक अपने गुरु एवं सम्प्रदाय के प्रति सुविदित एवं समर्पित रहें। साधक के पास कोई बल न हो, प्रत्युत एकमात्र गुरुनिष्ठा हो; तो वह ही उसके कल्याण हेतु पर्याप्त है। ध्यान रहे; गुरुनिष्ठा का तात्पर्य है — गुरुदेव के प्रति उनके अनुकूल शास्त्रोक्त व्यवहार को प्रस्तुत करना (तैत्तिरीयोपनिषद् १.११.२)। जो स्वयं सत्सम्प्रदाय में दीक्षित हों, अपनी आचार्यपरम्परा से प्राप्त मन्त्र के श्रेष्ठ एवं तेजस्वी उपासक हों, सदाचारसम्पन्न

एवं कुलीन हों, शिष्य के कल्याण हेतु सतत चिन्तित तथा उससे कुछ न चाहने वाले हों; ऐसे गुरु के प्रति समर्पित होना निश्चितत: श्रेयस्कर है।

।। ५. विरोधि-स्वरूप-विमर्श ।।

'विरोध' शब्द का अर्थ है — विपरीत। यह पाँच प्रकार का होता है : १. स्वविरोध, २. परविरोध, ३. उपायविरोध, ४. पुरुषार्थविरोध तथा ५. प्राप्तिविरोध। यदि संक्षेपत: कहें, तो रहस्यों के वास्तविक अर्थों से विपरीत धारणा करना ही ***'विरोध'*** कहलाता है। अब इन पाँचों का क्रमिक विवेचन किया जाता है :—

५.१. पीछे (स्वस्वरूप-विमर्श) में प्रतिपादित अपने वास्तविक स्वरूप को न मानकर, कैसी भी अज्ञानमूलक विपरीत धारणा करना ही ***'स्वविरोध'*** है। यथा देह-इन्द्रिय-मन-आदि से विलक्षण होते हुए भी अपने शरीर-आदि में अहंता-ममता रखकर स्वयं को मरणधर्मा-दु:खी-सुखी-आदि मानना। अथवा; वेदान्तग्रन्थ पढ़कर स्वयं को ब्रह्म कहने लग जाना। अथवा; स्वयं को भगवान् का दास न मानकर, अन्य देवी-देवताओं का दास समझने लग जाना। अथवा; सद्गुरु में मनुष्य-बुद्धि करना ... इत्यादि सभी स्वविरोध के उदाहरण हैं। अकारत्रय का विचार करते हुए स्वस्वरूप को यदि कोई श्रीवैष्णव भलीभाँति समझ ले, तो वह निश्चित ही स्वविरोध से बचा रहेगा।

वस्तुत: ***'अचित्'*** कही जाने वाली ***प्रकृति***, भगवान् की ***मायाशक्ति*** है; जो ***नित्य*** (अविनाशी), ***अज्ञ*** (ज्ञानशून्य = केवल ज्ञेय बनने वाली), ***अचेतन*** (जड = स्वयं कुछ भी कर सकने में असमर्थ) एवं ***परिवर्तनशील*** (विकारयुक्त) है। वह किसी की विकृति नहीं, अपितु विश्व की कारणभूता है। एक होते हुए भी अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होती है। वह सत्त्व, रजस् और तमस् नाम वाले तीन गुणों से युक्त रहती है। वही प्रकृति प्रधान, अजा इत्यादि अनेक नामों से जानी

जाती है। स्वयं तो ***निष्क्रिय*** है, तथापि ***भगवदधीन*** है। वही महत् (बुद्धि), अहंकार आदि से युक्त इस पूरे संसार को उत्पन्न करती है। हम सभी जीवों का अनुभव है कि अज्ञानी होने के कारण हमलोग स्वयं को प्रकृति से अभिन्न ही मानते हैं। इसलिए देह-इन्द्रिय-धन-सम्पत्ति-आदि — जो कि वास्तव में प्रकृति है, उन सभी — को अपना स्वरूप समझते हैं। यही स्वविरोध का अनुभूत उदाहरण है।

५.२. *'अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक श्रीभगवान् अनन्त गुणों के भण्डार तथा सभी अल्पताओं से अस्पृष्ट, मायातीत पूर्णपुरुषोत्तम हैं। उन्हीं की शरणागति के बलपर जीव का कल्याण हो सकता है'* — इस विचार को त्यागकर, भगवान् के सामर्थ्य को अल्प मानना। अथवा; समस्त जीवों एवं देवताओं को बल प्रदान करने वाले भगवान् को न्यून मानकर उनके अतिरिक्त किसी अन्य के परत्व (श्रेष्ठता) को स्वीकार करना। अथवा; भगवदीय अवतारों में शक्ति की अल्पता अथवा मनुष्य-बुद्धि करना। अथवा; भगवद्विग्रह को सामान्य काष्ठ-पाषाण-आदि की मूर्ति समझना। अथवा; भगवान् के चरित्र या दिव्यातिदिव्य नामों को सामान्य कथा-कहानी और गाने की वस्तु समझना। अथवा; परम्पराप्राप्त परमशक्तिशाली गुरुमन्त्र-आदि को साधारण शब्दावली समझना। नित्यगुणराशि भगवान् को केवल निर्गुण-निराकार ही मानना ... इत्यादि ***'परविरोध'*** कहलाते हैं। कुसंगत्यागपूर्वक परस्वरूप का अनुसन्धान करते रहने से इससे बचा जा सकता है।

५.३. श्रीभगवान् के अनुग्रह पर विश्वास न करके अन्य देवताओं की कृपा को ही अपनी समस्याओं के समाधान हेतु प्रशस्त साधन मानना। अथवा; कष्टनिवारण हेतु भगवत्कृपा के सामर्थ्य को अल्प समझना। अथवा; स्वयं को भगवद्दास न

मानकर शरणागति के प्रति अश्रद्धा रखना। अथवा; भगवत्प्रीत्यर्थ निष्काम कर्मों को त्यागकर केवल सकाम कर्मों को करना तथा विशेष मोक्षधर्म के त्यागपूर्वक भगवत्प्राप्तिरूप महान् लक्ष्य को भुलाकर सामान्य वर्णाश्रम-मर्यादारूप लौकिक कर्मों तक ही सिमटकर रह जाना ... इत्यादि ***'उपाय-विरोध'*** कहलाते हैं। ये सब भगवत्कृपा की प्राप्ति में बाधक हैं, अत: यथाशीघ्र त्याज्य हैं।

५.४. भगवत्सन्निधि, परमधाम-प्राप्ति एवं भगवत्प्रेम के महान् लाभ को त्यागकर; लौकिक कामनाओं की परिपूर्ति अथवा कैवल्य मुक्ति की सिद्धि हेतु प्रयत्नशील रहना ही ***'पुरुषार्थ-विरोध'*** कहलाता है।

५.५. 'प्राप्ति' का अर्थ है — श्रीभगवान्, उनके भक्तजन (श्रीवैष्णव महानुभाव) एवं अपने सद्गुरुदेव की निष्काम सेवा। इस प्रकार; उक्त तीनों के प्रति किए गए अपचार (विपरीत आचरण) को ***'प्राप्ति-विरोध'*** कहते हैं। आचरण की विपरीतता अथवा अनुकूलता की वास्तविक कसौटी केवल शास्त्र हैं। अत: जिसको शास्त्र ने निषिद्ध कर्म कहा है, वह सब ***'अपचार'*** (अपराध) अथवा 'प्राप्तिविरोध' की कोटि में आ जाते हैं। तथापि साधकों की सुविधा हेतु अब पूर्वोक्त प्रत्येक अपचार की संक्षिप्त व्याख्या करते हैं —

५.५.१. ***'भगवदपचार'*** का अर्थ है — सर्वेश्वर श्रीभगवान् के प्रति किया गया विपरीत आचरण। वराहपुराण (अध्याय ११७) में स्वयं श्रीभगवान् ने अपने प्रति न करने योग्य ३२ अपराधों को गिनवाया है : १. भगवान् को अपवित्र पदार्थ निवेदित करना; २. दूसरे का द्रव्य हड़पकर भगवत्सेवा करना; ३. स्त्रीसंग करने के बाद भगवद्विग्रह का स्पर्श करना; ४. रजस्वला स्त्री को देखने के बाद भगवत्पूजा करना; ५. अपवित्र अवस्था में अथवा शव को छूकर बिना स्नान किए भगवत्सेवा करना; ६. शवदर्शन के बाद बिना आचमन किए

भगवत्पूजा करना; ७. भगवत्पूजन बीच में छोड़कर शौच-आदि के लिए दौड़ना; ८. नीले वस्त्र पहनकर भगवत्सेवा करना; ९. पूजनकाल में अनर्गल वार्ताएँ करना; १०. शास्त्रविरुद्ध वस्तुओं का स्पर्श करके भगवत्प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होना; ११. क्रोधपूर्वक उपासना करना; १२. शास्त्रनिषिद्ध कर्मों को पवित्र समझकर भगवान् के प्रति समर्पित करना; १३. लाल वस्त्र पहनकर भगवत्सेवा करना; १४. अन्धकार में भगवान् का स्पर्श करना; १५. काले वस्त्रों को धारणकर भगवत्कार्य का सम्पादन करना; १६. बिना धोती पहने भगवत्पूजा करना; १७. स्वयं पकाकर अज्ञानवश भगवान् के प्रति निवेदित न करना; १८. लहसुन-आदि अभक्ष्य-भक्षण करके भगवान् के पास जाना; १९. मांसभक्षण करके भगवत्सेवा में उपस्थित होना; २०. दीपक का स्पर्श करके बिना हाथ धोए प्रभु की उपासना में लगना; २१. श्मशान से लौटकर बिना स्नान किए मेरी सेवा में उपस्थित होना; २२. हींग खाकर भगवत्पूजा करना; २३. सूअर-आदि के मांस को प्राप्त करने का प्रयत्न करना; २४. मद्यपान करके भगवत्सन्निधि में पहुँचना; २५. करमी शाक खाकर भगवत्सेवा में उपस्थित होना; २६. दूसरों के वस्त्र धारणकर भगवत्सेवा में पहुँचना; २७. प्रत्येक ऋतु में उत्पन्न होने वाली नई पैदावार (अन्न-आदि) को बिना भगवान् एवं देवताओं-पितरों-आदि को अर्पित किए ग्रहण करना; २८. जूता पहनकर तालाब या बावड़ी आदि में जाना; २९. शरीर में उबटन-तैल-आदि लगाकर बिना स्नान किए भगवत्सेवा करना; ३०. अजीर्ण (बदहज़मी) से ग्रस्त होकर भगवत्सन्निधि में पहुँचना; ३१.भगवान् को चन्दन-पुष्प-आदि अर्पित किए बिना धूप देना; ३२. बिना कोई मंगलध्वनि (घंटी-शंख-आदि) किए भगवान् के कपाट खोलना।

पद्मपुराण (पातालखण्ड ७९.३६-४४) में प्रकारान्तर से ३२ भगवदपचारों का उल्लेख किया गया है : १. भगवान् के समक्ष पादुका या सवारी का प्रयोग करना; २. भगवान् के उत्सवों का आयोजन या दर्शन न करना; ३. भगवान् के समक्ष उन्हें प्रणाम न करना; ४. अशुद्ध अवस्था में दर्शन करना; ५. एक हाथ से प्रणाम करना; ६-२७. भगवान् के समक्ष — एक ही स्थान पर खड़े-खड़े परिक्रमा करना, पाँव फैलाकर बैठना, पलंग/खाट पर बैठना, सोना, झूठ बोलना, खाना, ज़ोर-ज़ोर से बोलना, परस्पर बातचीत करना, रोना-चिल्लाना, झगड़ा करना, किसी को पीड़ा देना, किसी पर अनुग्रह करना, स्त्रियों को रागपूर्वक देखना या उनसे संवाद करना, कम्बल ओढ़ना, दूसरे की निन्दा या स्तुति करना, अश्लील शब्द बोलना, अधोवायु (गुदामार्ग से आन्त्रवायु) को त्यागना, गुरुमहिमा का वर्णन न करना, दूसरों को प्रणाम करना, स्वयं अपनी प्रशंसा करना, किसी अन्य देवता की निन्दा करना; २८. सामर्थ्यवान् होते हुए भी गौण उपचारों से भगवत्पूजा करना; २९. भगवान् को भोग लगाए बिना कुछ खाना-पीना; ३०. ऋतुफल को निवेदित न करना; ३१. घर की बची हुई शाक-सब्ज़ी को भगवान् के प्रति निवेदित करना; ३२. भगवान् की ओर पीठ करके बैठना।

५.५.२. अब ***'भागवतापचार'*** का संक्षिप्त विवेचन करते हैं। अहंकार-विद्या-धन-बल-अधिकार-रूप-जाति-आदि के अभिमान में आकर अन्य श्रीवैष्णवों एवं महाभागवतों के प्रति हीनदृष्टि, वैर-विरोध अथवा प्रतिकूल मनोभावना रखना ही भागवतजनों का अपचार कहलाता है। फलत: *'कोई भी श्रीवैष्णव — चाहे वह किसी कुल या परिवार में जन्मा हो, निर्धन हो या धनी, अधिकार-सम्पन्न हो अथवा नहीं, रूपवान् हो या कुरूप, विद्वान् हो या मूर्ख, गुणी हो या*

गुणहीन; किन्तु वह — प्रभु का चरणाश्रित भक्त है, अत: हमारे लिए सदैव पूज्य है' — बस! यही सद्भावना रखनी चाहिए। प्राणिमात्र परमेश्वर का ही अंश है (गीता १५.७), अत: किसी को भी हेय (अनादर/निन्दा का पात्र) नहीं समझना चाहिए। कारण कि भागवतापचार करने वाले साधक के लोक-परलोक बिगड़ जाते हैं। उसके सभी सत्कर्म निष्फल हो जाते हैं तथा वह श्रीहरि के कोप का भाजन बनता है। यह सम्प्रदाय-प्रसिद्ध तथ्य है कि यदि भागवतापचार करने वाले किसी व्यक्ति का एक हाथ स्वयं भगवान् तथा दूसरा हाथ उसके सर्वसमर्थ गुरुदेव पकड़ लें और वे दोनों उस जीव को अपने साथ वैकुण्ठ लेकर जाएँ, तो वैकुण्ठ का द्वार बन्द हो जाएगा; किन्तु उस भागवतापचार करने वाले को वैकुण्ठ में प्रवेश नहीं मिलेगा। अत: इस विरोध से ध्यानपूर्वक बचना चाहिए।

५.५.३. *'आचार्यापचार'* का अभिप्राय है — अपने आचार्य (दीक्षागुरु अथवा सम्प्रदाय-प्रवर्तक आचार्य) के प्रति मनसा-वाचा-कर्मणा अनुचित (शास्त्रनिषिद्ध) व्यवहार करना। आचार्य महती कृपा करके शिष्य को भगवान् का शरणागत बनाते हैं; जिससे कालान्तर में वह चरणाश्रित साधक संसारभाव (कर्मबन्धन) से मुक्त हो जाता है। अत: उनके ऋण से कभी उऋण नहीं हुआ जा सकता। फलत: साधक को चाहिए कि वह किसी भी प्रकार से अपने आचार्य के प्रति हीन भावना न रखे। वस्तुत: अल्पज्ञ एवं असमर्थ जीव के वश्य की बात नहीं है कि वह स्वयं भगवत्प्राप्ति कर सके। हम कलियुगी जीवों में याग, प्रवचन, तन्त्र, मन्त्र, ज्ञान, ध्यान, भक्ति, प्रपत्ति आदि हेतु अपेक्षित योग्यता का नितरां अभाव है। इसी को ध्यान में रखकर हमारे सम्प्रदाय-प्रवर्तक आचार्यों ने श्रीभगवान् से अपनी अनुगत शिष्यपरम्परा के मोक्ष की सुनिश्चितता का वरदान माँगा था। फलत: सभी श्रीवैष्णवों की मुक्ति का प्रत्यक्ष (साक्षात्)

साधन है — सम्प्रदाय-प्रवर्तकाचार्य के प्रति प्रपत्ति। दीक्षागुरु की कृपा से साधक सम्प्रदाय-प्रवर्तकाचार्य से जुड़ पाता है, अत: उन (दीक्षाचार्य) की कृपा साधक के मोक्ष में परोक्ष (परम्परा) साधन है। अतएव किसी भी परिस्थिति में साधक को आचार्यापचार नहीं करना चाहिए।

५.५.४. *'असह्यापचार'* से अभिप्रेत है — अन्य श्रीवैष्णवों अथवा अपने गुरुदेव से भगवच्चर्चा या सत्संग न करना अथवा उसमें व्यवधान डालना। यद्यपि पूर्वोक्त कोई अपचार न करना एक भिन्न विषय है; किन्तु उनसे बचने के बाद भी भगवद्विषयक चर्चाओं में संलग्न न होना अपने आप में एक भीषण अपचार है। इसीलिए अपने गुरु अथवा अन्य श्रीवैष्णवों से सतत भगवचर्चा करनी चाहिए। कदाचित् उक्त दोनों का सत्संग सुलभ न हो, तो एकान्त में बैठकर भगवच्चिन्तन करना चाहिए। यदि एकाग्रभाव से एकान्तिक आध्यात्मिक चिन्तन की योग्यता (स्थिति) न हो, तो स्वाध्याय (मननपूर्वक ग्रन्थाध्ययन अथवा श्रीभगवान् की सन्निधि में ग्रन्थवाचन) करना चाहिए।

५.५.५. *'अकृत्यकरणापचार'* (अथवा निषिद्ध-कर्मरूपी अपचार) अन्तिम प्राप्तिविरोध है। धैर्य-क्षमा-संयम-आदि सभी सद्गुण सामान्य धर्म (प्राणिमात्र के लिए समानत: पालनीय नियम) हैं। इनका कदापि त्याग नहीं करना चाहिए। तदतिरिक्त शास्त्र में जिन पदार्थों (मद्य-लहसुन-प्याज़-मसूर-आदि; अथवा होटल-आदि में या अशुद्धिपूर्वक निर्मित भक्ष्य) के भक्षण का निषेध हो, उनका सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। अन्न-दोष से ***'ज्ञानविरोध'*** (सद्बुद्धि का क्षय) होता है। शास्त्रों ने जिन लोगों (लोभी-लम्पट-कामुक-दुश्चरित्र-चोर-वेश्यागामी-मद्यप-पाखण्डी-अवैष्णव-आदि) के सहवास (संग) को निषेध किया है, उनसे सदैव दूर रहना चाहिए; क्योंकि सहवास-दोष से ***'भोगविरोध'*** (धर्मपूर्वक

जीवनयापन में विघ्न) होता है। स्वयं को श्रीमन्नारायण का अंश (दास/भक्त) मानने के अतिरिक्त कुछ भी मानने से अभिमान (अभिनिवेश) बढ़ता है; जिससे ***'स्वरूपविरोध'*** होता है। स्वयं को ब्राह्मण-आदि अथवा स्त्री-पुरुष मानने का प्रयोजन है — शास्त्रोचित लोकव्यवहार का निष्काम निर्वाह। इससे चित्तशुद्धि होती है। किन्तु स्वरूपत: स्वयं को श्रीप्रभु का दास ही समझें; अन्यथा कर्मबन्धक स्वरूपविरोध होना सुनिश्चित है।

इस प्रकार; श्रीवैष्णवों की सुविधा हेतु अर्थपंचक का रसरहस्य प्रस्तुत किया गया। प्रत्येक श्रीवैष्णव को इसका अनुसन्धान अवश्य करना चाहिए।

***

।। स्मरणीय तथ्य ।।

शेषावतार जगद्गुरु भगवान् श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज का आविर्भाव **वैशाख शुक्ला षष्ठी (सन् १०१७ ई.)** को **श्रीपेरुम्बुदूर (तमिलनाडु)** में हुआ तथा वे **१२० वर्षों तक** इस धराधाम में विराजमान रहे। उन्होंने नौ ग्रन्थों की रचना की : १. **वेदान्तसंग्रह** (विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त पर प्रवचन), २. **श्रीभाष्य** (ब्रह्मसूत्र की विस्तृत व्याख्या), ३. **गीताभाष्य** (श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या), ४. **वेदान्तदीप** (ब्रह्मसूत्र की सुगम व्याख्या), ५. **वेदान्तसार** (ब्रह्मसूत्र की अतिसंक्षिप्त व्याख्या), ६. **शरणागतिगद्य** (प्रपत्ति-सिद्धान्त का प्रतिपादक), ७. **श्रीरंगगद्य** (भगवान् श्रीरंगनाथ की महिमा पर विशेष उद्बोधन), ८. **वैकुण्ठगद्य** (भगवान् के परमधाम का वर्णन), ९. **नित्यग्रन्थ** (उपासनाविधि का विवरण)। आचार्यश्री ने अपने सम्प्रदाय के लिए निम्नलिखित **छः**

दिव्य आज्ञाएँ दी हैं : **१.** समर्थ विद्वान् लोग श्रीभाष्य का गुरुमुख से स्वाध्याय करके दूसरे अधिकारियों को पढ़ाएँ, **२.** असमर्थ लोग श्रीशठकोपस्वामीजी की सहस्त्रगीतियों का मनन करें, **३.** १०८ दिव्यदेशों में निवास करते हुए वहाँ विराजमान श्रीभगवान् की सेवा करें, **४.** द्वयमन्त्र का अर्थानुसन्धान करें, **५.** श्रीवैष्णवों की सेवा में संलग्न हो जाएँ तथा **६.** यादवाद्रि पर कुटिया बनाकर निवास करें।

उपर्युक्त आज्ञाओं का यथासामर्थ्य पालन करना चाहिए तथा निम्नलिखित श्लोक को कण्ठस्थ करके सदैव गाते रहना चाहिए :

यो नित्य-मच्युत-पदाम्बुज-युग्म-रुक्म-
व्यामोह-तस्तदितराणि तृणाय मेने ।
अस्मद्-गुरोर्-भगवतोऽस्य दयैक-सिन्धो
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ।।

साथ ही; श्रीभाष्य के प्रतीकभूत — उसके निम्नलिखित मंगलाचारण का भी यथायोग्य अनुसन्धान करते रहना चाहिए।

अखिल-भुवन-जन्म-स्थेम-भङ्गादि-लीले
विनत-विविध-भूत-व्रात-रक्षैक-दीक्षे ।
श्रुति-शिरसि विदीप्ते ब्रह्मणि श्रीनिवासे
भवतु मम परस्मिन् शेमुषी भक्ति-रूपा ।।

***

*** अथ उत्तरभागः ***

।। अथ सुमङ्गल-स्तोत्रम् ।।

सुमङ्गलं मङ्गल-मीश्वराय ते सुमङ्गलं मङ्गल-मच्युताय ते ।
सुमङ्गलं मङ्गलमन्तरात्मने सुमङ्गलं मङ्गल-मब्जनाभ ते ।।१।।
सुमङ्गलं श्री-निलयोरु-वक्षसे सुमङ्गलं पद्म-भवादि-सेविते ।
सुमङ्गलं पद्म-जगन्निवासिने सुमङ्गलं चाश्रित-मुक्ति-दायिने ।।२।।
चाणूर-दर्पघ्न-सुबाहु-दण्डयोः सुमङ्गलं मङ्गल-मादि-पूरुषे ।
बालार्क-कोटि-प्रतिमाय ते विभो चक्राय दैत्येन्द्र-विनाश-हेतवे ।।३।।
शङ्खाय कोटीन्दु-समान-तेजसे शार्ङ्गाय रत्नोज्ज्वल-दिव्य-रूपिणे ।
खड्गाय विद्यामय-विग्रहाय ते सुमङ्गलं मङ्गल-मस्तु ते विभो ।।४।।
तदाऽऽवयोस्तत्त्व-विशिष्ट-शेषिणे शेषित्व-सम्बन्ध-निबोधनाय ते ।
यन्मङ्गलानां च सुमङ्गलाय ते पुनः पुनर्-मङ्गल-मस्तु सन्ततम् ।।५।।

।। अथ पुष्पाञ्जलिः ।।

(सामान्य सद्गृहस्थ लोग केवल रेखांखित श्लोकों का ही पाठ करें)

हरिः ॐ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीय चक्षुरातम् ।।१।। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवां स समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ।।२।। पर्याप्त्या अनन्तरायाय सर्वस्तोमोऽतिरात्र उत्तममहर्भवति सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यजित्त्यै सर्वमेव तेनाप्नोति सर्वं जयति। हरिः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।३।।

सुगन्ध-वल्ली-शतपत्र-जाती-सुवर्ण-चम्पा-वकुलोद्-भवानि ।
गृहाण देवेश मया-र्पितानि प्रभो हरे श्री-तुलसी-दलानि ।।४।।

(श्रीभगवान् के चरणों में तुलसीदलों को समर्पित करें)

हरिः ॐ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ।।५।। ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा मा व स्तेनऽ ईशत माघशंसो ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ।।६।। ॐ अग्नऽ आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। निहोता सत्सि बर्हिषि ।।७।। ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्त्रवन्तु नः ।।८।। ॐ इत्यग्रे व्याहरेत्। नम इति पश्चात्। नारायणाय इत्युपरिष्टात्। ॐ इत्येकाक्षरम्। नम इति द्वेऽक्षरे। नारायणायेति पञ्चाक्षराणि। एतद्वै नारायणस्य अष्टाक्षरं पदम्। यो ह वै नारायणस्य अष्टाक्षरं पदमध्येति। अनपब्रुवः सर्वमायुरेति। विन्दते प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यम्। ततोऽमृतत्वम् अश्नुते ततोऽमृतत्वम् अश्नुत इति। य एवं वेद। इत्युपनिषद् ।।९।। अथातः सामयाचारिकान् धर्मान् व्याख्यास्यामः। धर्मज्ञः समयः प्रमाणं वेदाश्च। चत्वारो वर्णा ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रास्तेषां पूर्वः पूर्वो जन्मतः श्रेयान् ।।१०।। अथ कर्माण्याचाराद्यानि गृह्यन्ते। उदगयन-पूर्वपक्षाहः पुण्याहेषु कार्याणि यज्ञोपवीतिना प्रदक्षिणम् ।।११।। अथातो धर्मजिज्ञासा। अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।।१।।

नमस्तस्मै वराहाय लीलयोद्-धरते महीम् ।
खुर-मध्य-गतो यस्य मेरुः खण-खणायते ।।२।।

पितरं मातरं दारान् पुत्रान् बन्धून् सखीन् गुरून् ।
रत्नानि धन-धान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ।।३।।
सर्व-धर्मांश्च सन्त्यज्य सर्व-कामांश्च साक्षरान् ।
लोक-विक्रान्त-चरणौ शरणं तेऽव्रजं विभो ।।४।।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च गुरुस्त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ।।५।।
पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्य-भ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्र येऽप्यप्रतिमप्रभाव ।।६।।
तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामह-मीश-मीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।।७।।

मनोवाक्-कायैः अनादि-काल-प्रवृत्त-अनन्त-अकृत्य-करण-कृत्याकरण-भगवदपचार-भागवतापचार-असह्यापचार-रूप-नानाविध-अनन्तापचारान् आरब्धकार्यान् अनारब्धकार्यान् कृतान् क्रिय-माणान् करिष्य-माणांश्च सर्वान् अशेषतः क्षमस्व। अनादि-काल-प्रवृत्त-विपरीत-ज्ञानम् आत्म-विषयं कृत्स्न-जगद्-विषयं च विपरीत-वृत्तं चाशेष-विषयम् अद्यापि वर्तमानं वर्तिष्य-माणं च सर्वं क्षमस्व। मदीय-अनादि-कर्म-प्रवाह-प्रवृत्तां भगवत्स्वरूप-तिरोधान-करीं विपरीत-ज्ञान-जननीं स्वविषयायाश्च भोग्य-बुद्धे-र्जननीं देहेन्द्रियत्वेन भोग्यत्वेन सूक्ष्म-रूपेण चावस्थितां दैवीं गुणमयीं मायां *'दासभूतः शरणागतोऽस्मि' 'तवास्मि दासः'* इति वक्तारं मां तारय ।।८।।

इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम् । गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम् ।।९।। तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम् ।

बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे ।।१०।। **तमद्भुतं बालक-मम्बुजेक्षणं** चतुर्भुजं शङ्ख-गदार्युदायुधम् । **श्रीवत्स-लक्ष्मं गलशोभि-कौस्तुभं** पीताम्बरं सान्द्र-पयोद-सौभगम् ।।११।। **महार्ह-वैदूर्य-किरीट-कुण्डल-**त्विषा परिष्वक्त-सहस्र-कुन्तलम् । **उद्दाम-काञ्च्यङ्गद-कङ्कणादिभिर्-**विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ।।१२।। **तासामाविरभूच्छौरिः** स्मयमान-मुखाम्बुजः । **पीताम्बरधरः स्रग्वी** साक्षाद् मन्मथ-मन्मथः ।।१३।। **एष नारायणः श्रीमान्** क्षीरार्णव-निकेतनः । **नागपर्यङ्क-मुत्सृज्य** ह्यागतो मथुरां पुरीम् ।।१४।। **अहो वीर्यमहो शौर्य-**महो बाहू-पराक्रमम् । **नारसिंहं परं दैव-**महो बल-महोबलम् ।।१५।। **वैकुण्ठे तु परे लोके** श्रिया सार्द्धं जगत्पतिः । **आस्ते विष्णु-रचिन्त्यात्मा** भक्तैर्-भागवतैः सह ।।१६।। **मायावी परमानन्दं** त्यक्त्वा वैकुण्ठ-मुत्तमम् । **स्वामि-पुष्करिणी-तीरे** रमया सह मोदते ।।१७।। **मुक्तिदश्च मुमुक्षूणां** सर्वेषां सर्व-कामदः । **क्रीडार्थं लोक-रक्षार्थं** वसाम्यत्र श्रिया सह ।।१८।। **वेङ्कटाद्रि-समं स्थानं** ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन । **वेङ्कटश-समो देवो** न भूतो न भविष्यति ।।१९।। **चैत्रमासे सिते पक्षे** चतुर्दश्यां तिथौ मुनेः । **शोभने हस्त-नक्षत्रे** रविवार-समन्विते ।।२०।। **वपाहोमे प्रवृत्ते तु** प्रातः-सवन-कालिके। **धातु-रुत्तर-वेद्यन्तः** प्रादुरासीद् जनार्दनः ।।२१।। **वपा-परिमलोल्लास-**वासिताधर-पल्लवम् । **मुखं वरद-राजस्य** मुग्ध-स्मित-मुपास्महे ।।२२।। **फाल्गुने मासि पूर्णायाम्** ऋक्षर्क्षेन्दु-वासरे । **गोविन्द-राजो भगवान्** प्रादुरासीद् महामुनिः ।।२३।। **कस्तूरी-कलितोर्ध्व-पुण्ड्र-तिलकं कर्णान्ति-लोलेक्षणं** मुग्ध-स्मेर-मनोह-राधर-दलं मुक्ता-

किरीटोज्ज्वलम् । **पश्यन् मानस-पश्यतो हरवरं पर्याय-पङ्केरुहं** श्रीरङ्गाधिपतेः कदा नु वदनं सेवेय भूयोऽप्यहम् ।।२४।। **कदा पुनः शङ्ख-रथाङ्ग-कल्पक-ध्वजा-रविन्दाङ्कुश-वज्र-लाञ्छनम्। त्रिविक्रम त्वच्-चरणाम्बुज-द्वयं** मदीय-मूर्धान-मलङ्करिष्यति ।।२५।। **अखिल-भुवन-जन्म-स्थेम-भङ्गादि-लीले** विनत-विविध-भूत-व्रात-रक्षैक-दीक्षे । **श्रुति-शिरसि विदीप्ते ब्रह्मणि श्रीनिवासे** भवतु मम परस्मिन् शेमुषी भक्तिरूपा ।।२६।। **पाराशर्य-वचः-सुधाम् उपनिषद्-दुग्धाब्धि-मध्योद्धृतां** संसाराग्नि-विदीपन-व्यपगत-प्राणात्म-सञ्जीवनीम्। **पूर्वाचार्य-सुरक्षितां बहुमति-व्याघात-दूरस्थिताम्** आनीतां तु निजाक्षरैः सुमनसो भौमाः पिबन्त्वन्वहम् ।।२७।। **पितेव त्वत्प्रेयान् जननि परिपूर्णागसि जने** हितस्रोतो वृत्त्या भवति च कदाचित् कलुषधीः । **किमेवं निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितैः** उपायैर्-विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः ।।२८।। **जयति सकल-विद्या-वाहिनी-जन्म-शैलो** जनि-पथ-परिवृत्ति-श्रान्त-विश्रान्ति-शाखी । **निखिल-कुमति-मावा-शर्वरी-बाल-सूर्यो** निगम-जलधि-वेला-पूर्णचन्द्रो यतीन्द्रः ।।२९।। **नमः प्रणव-शोभितं नव-काषाय-खण्डाम्बरं** त्रिदण्ड-परिमण्डितं त्रिविध-तत्त्व-निर्वाहकम् । **दयाञ्चित-दृगञ्चलं दलित-वादि-वाग्वैभवं** शमादि-गुणसागरं शरण-मेमि रामानुजम् ।।३०।। **उपवीतिन-मूर्ध्व-पुण्ड्र-वन्तं** त्रिजगत्-पुण्य-फलं त्रिदण्ड-हस्तम् । **शरणागत-सार्थ-वाह-मीडे शिखया** शेखरिणं पतिं यतीनाम् ।।३१।। **सुशङ्ख-चक्र-लाञ्छनः सदूर्ध्व-पुण्ड्र-मण्डितः** सुकण्ठ-लग्न-सत्तुलस्य-नर्ध-पद्म-मालिकः । **सितान्तरीय-सोत्तरीय-यज्ञसूत्र-शोभितो**

ममावि-रस्तु मानसे प्रभुस्तु वेङ्कटेश्वरः ।।३२।। नमज्जनस्य चित्त-भित्ति-भक्ति-चित्र-तूलिका भवाहि-वीर्य-भञ्जने नरेन्द्र-मन्त्र-यन्त्रणा। प्रपन्न-लोक-कैरव-प्रसन्न-चारु-चन्द्रिका शठारि-हस्त-मुद्रिका हठाद् धुनोतु मे तमः ।।३३।। श्रीमाधवाङ्घ्रि-जलज-द्वय-नित्य-सेवा प्रेमा-विलाशय-पराङ्कुश-पाद-भक्तम् । कामादि-दोषहर-मात्म-पदाश्रितानां रामानुजं यतिपतिं प्रणमामि मूर्ध्ना ।।३४।। भरताय परं नमोऽस्तु तस्मै प्रथमो-दाहरणाय भक्ति-भाजाम् । यदु-पज्ञ-मशेषतः पृथिव्यां प्रथितो राघव-पादुका-प्रभावः ।।३५।। नाहं विप्रो न च नर-पति-नैंव वैश्यो न शूद्रो नो वा वर्णी न च गृह-पतिर्-ना वनस्थो यतिर्-वा । किन्तु प्रोद्यन्-निखिल-परमानन्द-पूर्णा-मिताब्धेर्-लक्ष्मी-भर्तुः पद-कमलयोर्-दास-दासानु-दासः ।।३६।। श्रीनगर्यां महापुर्यां ताम्र-पर्ण्युत्तरे तटे । श्री-तिन्त्रिणी-मूल-धाम्नि शठ-कोपाय मङ्गलम् ।।३७।।

।। अथ श्रीविष्णो-र्द्वादश-नामावलिः ।।

१. ॐ केशवाय नमः, २. ॐ नारायणाय नमः, ३. ॐ माधवाय नमः, ४. ॐ गोविन्दाय नमः, ५. ॐ विष्णवे नमः, ६. ॐ मधुसूदनाय नमः, ७. ॐ त्रिविक्रमाय नमः, ८. ॐ वामनाय नमः, ९. ॐ श्रीधराय नमः, १०. ॐ हृषीकेशाय नमः, ११. ॐ पद्मनाभाय नमः, १२. ॐ दामोदराय नमः ।।

।। अथ श्रीरामाष्टोत्तर-शतनामावलिः ।।

श्रीरामाय नमः। रामभद्राय नमः। रामचन्द्राय नमः। शाश्वताय नमः।

राजीव-लोचनाय नमः। श्रीमते नमः। राजेन्द्राय नमः। रघुपुङ्गवाय नमः। जानकी-वल्लभाय नमः। जैत्राय नमः। जितामित्राय नमः। जनार्दनाय नमः। विश्वामित्र-प्रियाय नमः। दान्ताय नमः। शरण-त्राण-तत्पराय नमः। वालि-प्रमथनाय नमः। वाग्मिने नमः। सत्य-वाचे नमः। सत्य-विक्रमाय नमः। सत्य-व्रताय नमः (२०) व्रत-धराय नमः। सदा हनुमदा-श्रिताय नमः। कौसलेयाय नमः। खरध्वंसिने नमः। विराध-वध-पण्डिताय नमः। विभीषण-परित्रात्रे नमः। हर-कोदण्ड-खण्डनाय नमः। सप्त-ताल-प्रभेत्रे नमः। दशग्रीव-शिरो-हराय नमः। जामदग्न्य-महादर्प-दलनाय नमः। ताटकान्तकाय नमः। वेदान्त-साराय नमः। वेदात्मने नमः। भव-रोगस्य भेषजाय नमः। दूषण-त्रिशिरो-हन्त्रे नमः। त्रिमूर्तये नमः। त्रिगुणात्मकाय नमः। त्रिविक्रमाय नमः। त्रिलोकात्मने नमः। पुण्य-चारित्र-कीर्तनाय नमः। त्रिलोक-रक्षकाय नमः (४०) धन्विने नमः। दण्डकारण्य-वर्तनाय नमः। अहल्या-शाप-विमोचनाय नमः। पितृभक्ताय नमः। वर-प्रदाय नमः। जितेन्द्रियाय नमः। जित-क्रोधाय नमः। जितामित्राय नमः। जगद्गुरवे नमः। ऋक्ष-वानर-सङ्घातिने नमः। चित्रकूट-समाश्रयाय नमः। जयन्त-त्राण-वरदाय नमः। सुमित्रा-पुत्र-सेविताय नमः। सर्व-देवादि-देवाय नमः। मृत-वानर-जीवनाय नमः। माया-मारीच-हन्त्रे नमः। महादेवाय नमः। महाभुजाय नमः। सर्वदेव-स्तुताय नमः। सौम्याय नमः। ब्रह्मण्याय नमः। मुनि-संस्तुताय नमः। महा-योगिने नमः। महोदराय नमः। सुग्रीवेप्सित-राज्यदाय नमः। सर्व-पुण्याधिक-फलाय नमः (६०) स्मृत-सर्वौघ-नाशनाय

नमः। आदि-पुरुषाय नमः। परम-पुरुषाय नमः। महापुरुषाय नमः। पुण्योदयाय नमः। दया-सराय नमः। पुराण-पुरुषोत्तमाय नमः। स्मित-वक्त्राय नमः। मित-भाषिणे नमः। पूर्व-भाषिणे नमः। राघवाय नमः। अनन्त-गुण-गम्भीराय नमः। धीरोदात्त-गुणोत्तमाय नमः (८०) माया-मानुष-चारित्राय नमः। महादेवादि-पूजिताय नमः। सेतुकृते नमः। जित-वाराशये नमः। सर्व-तीर्थ-मयाय नमः। हरये नमः। श्यामाङ्गाय नमः। सुन्दराय नमः। शूराय नमः। पीत-वाससे नमः। धनुर्धराय नमः। सर्वयज्ञाधिपाय नमः। यज्विने नमः। जरा-मरण-वर्जिताय नमः। शिव-लिङ्ग-प्रतिष्ठात्रे नमः। सर्वापगुण-वर्जिताय नमः। परमात्मने नमः। परब्रह्मणे नमः। सच्चिदानन्द-विग्रहाय नमः। परं ज्योतिषे नमः। परं धाम्ने नमः। पराकाशाय नमः। परात्पराय नमः। परेशाय नमः। पारगाय नमः। पाराय नमः। सर्व-देवात्मकाय नमः। परस्मै नमः (१०८) श्रीरामचन्द्राय नमः।।

स्वस्ति श्रीहनुमद्-अङ्गदादि-समस्त-परिजन-परिचारिका-समेत-श्रीश्री-सीता-रामचन्द्र-परब्रह्मणे नमः

।। अथ श्रीकृष्णाष्टोत्तर-शतनामावलिः ।।

श्रीकृष्णाय नमः। कमला-नाथाय नमः। वासुदेवाय नमः। सनातनाय नमः। वसुदेवात्मजाय नमः। पुण्याय नमः। लीला-मानुष-विग्रहाय नमः। श्रीवत्स-कौस्तुभ-धराय नमः। यशोदा-वत्सलाय नमः। हरये नमः। चतुर्भुजात्त-चक्रासि-गदा-शङ्ख्याद्युदायुधाय नमः। देवकी-नन्दनाय नमः। श्रीशाय नमः। नन्दगोप-प्रियात्मजाय नमः। यमुना-वेग-संहारिणे नमः। बलभद्र-प्रियानुजाय नमः। पूतना-जीवितापहराय

नमः। शकटासुर-भञ्जनाय नमः। नन्दव्रज-जनानन्दिने नमः। सच्चिदानन्द-विग्रहाय नमः (२०) नवनीत-विलिप्ताङ्गाय नमः। नवनीत-नटाय नमः। अनघाय नमः। नवनीत-लवाहारिणे नमः। मुचुकुन्द-प्रसादकाय नमः। षोडश-स्त्री-सहस्रेशाय नमः। त्रिभङ्गिने नमः। मधुराकृतये नमः। शुक-वागमृताब्धीन्दवे नमः। गोविन्दाय नमः। गोविदां पतये नमः। वत्स-वाटी-चराय नमः। अनन्ताय नमः। धेनुकासुर-भञ्जनाय नमः। तृणीकृत-तृणावर्ताय नमः। यमलार्जुन-भञ्जनाय नमः। उत्ताल-ताल-भेत्रे नमः। तमाल-श्यामलाकृतये नमः। गोप-गोपीश्वराय नमः। योगिने नमः। कोटि-सूर्य-सम-प्रभाय नमः (४०) इला-पतये नमः। परं ज्योतिषे नमः। यादवेन्द्राय नमः। यदूद्वहाय नमः। वनमालिने नमः। पीत-वाससे नमः। पारिजातप-हारकाय नमः। गोवर्धना-चलोद्धर्त्रे नमः। गोपालाय नमः। सर्व-पालकाय नमः। अजाय नमः। निरञ्जनाय नमः। काम-जनकाय नमः। कञ्ज-लोचनाय नमः। मधुघ्ने नमः। मथुरा-नाथाय नमः। द्वारका-नायकाय नमः। वन्दनार्त्त-सवारिणे नमः। बलिने नमः। वृन्दावनान्त-सञ्चारिणे नमः (६०) तुलसी-दाम-भूषणाय नमः। स्यमन्तक-मर्णे हर्त्रे नमः। नर-नारायणात्मकाय नमः। कुब्जा-कृष्टाम्बर-धराय नमः। मायिने नमः। परम-पूरुषाय नमः। मुष्टिकासुर-चाणूर-मल्ल-युद्ध-विशारदाय नमः। संसार-वैरिणे नमः। कंसारये नमः। मुरारये नमः। नरकान्तकाय नमः। अनादि-ब्रह्मचारिणे नमः। कृष्णा-व्यसन-कर्षकाय नमः। शिशुपाल-शिरश्छेत्रे नमः। दुर्योधन-कुलान्तकाय नमः। विदुराक्रूर-वरदाय नमः। विश्वरूप-प्रदर्शकाय

नमः। सत्यवाचे नमः। सत्य-सङ्कल्पाय नमः। सत्यभामा-रताय नमः। जयिने नमः (८०) सुभद्रा-पूर्वजाय नमः। जिष्णवे नमः। भीष्म-मुक्ति-प्रदायकाय नमः। जगद्गुरवे नमः। जगन्नाथाय नमः। वेणु-नाद-विशारदाय नमः। वृषभासुर-विध्वंसिने नमः। बाणासुर-करान्त-काय नमः। युधिष्ठिर-प्रतिष्ठात्रे नमः। बर्हि-बर्हावतंस-काय नमः। पार्थ-सारथये नमः। अव्यक्त-गीतामृत-महोदधये नमः। कालीय-फणि-माणिक्य-रञ्जित-श्रीपदाम्बुजाय नमः। दामोदराय नमः। यज्ञभोक्त्रे नमः। दानवेन्द्र-विनाशनाय नमः। नारायणाय नमः। परस्मै ब्रह्मणे नमः। पन्नगाशन-वाहनाय नमः। जल-क्रीडा-समासक्त-गोपी-वस्त्राप-हारकाय नमः। पुण्य-श्लोकाय नमः। तीर्थ-कराय नमः। वेद-वेद्याय नमः। दया-निधये नमः। सर्व-तीर्थात्मकाय नमः। सर्वग्रह-रूपिणे नमः। परात्पराय नमः (१०८)।

स्वस्ति-श्रीरुक्मिणी-सत्यभामा-समेताय श्रीगोपाल-स्वामिने नमः

।। अथ श्रीलक्ष्मी-अष्टोत्तरशत-नामावलिः ।।

प्रकृत्यै नमः। विकृत्यै नमः। विद्यायै नमः। सर्वभूत-हित-प्रदायै नमः। श्रद्धायै नमः। विभूत्यै नमः। सुरभ्यै नमः। परमात्मिकायै नमः। वाचे नमः। पद्मा-लयायै नमः। पद्मायै नमः। शुचये नमः। स्वाहायै नमः। स्वधायै नमः। सुधायै नमः। धन्यायै नमः। हिरण्मय्यै नमः। लक्ष्म्यै नमः। नित्य-पुष्टायै नमः (२०) विभावर्यै नमः। अदित्यै नमः। दित्यै नमः। दीप्तायै नमः। वसुधायै नमः। वसुधारिण्यै नमः। कमलायै नमः। कान्तायै नमः। कामाक्ष्यै नमः। क्रोध-सम्भवायै नमः। अनुग्रह-प्रदायै नमः। बुद्धये नमः। अनघायै नमः।

हरि-वल्लभायै नमः। अशोकायै नमः। अमृतायै नमः। दीप्तायै नमः। लोक-शोक-विनाशिन्यै नमः। धर्म-निलयायै नमः (४०) करुणायै नमः। लोक-मात्रे नमः। पद्म-प्रियायै नमः। पद्म-हस्तायै नमः। पद्माक्ष्यै नमः। पद्म-सुन्दर्यै नमः। पद्मोद्भवायै नमः। पद्ममुख्यै नमः। पद्मनाभ-प्रियायै नमः। रमायै नमः। पद्म-माला-धरायै नमः। देव्यै नमः। पद्मिन्यै नमः। पद्म-गन्धिन्यै नमः। पुण्य-गन्धायै नमः। सुप्रसन्नायै नमः। प्रसादाभि-मुख्यै नमः। प्रभायै नमः। चन्द्रवदनायै नमः। चन्द्रायै नमः। चन्द्र-सहोदर्यै नमः। चतुर्भुजायै नमः (६०) चन्द्र-रूपायै नमः। इन्दिरायै नमः। इन्दु-शीतलायै नमः। आह्लाद-जनन्यै नमः। पुष्टायै नमः। शिवायै नमः। शिवकर्यै नमः। सत्यै नमः। विमलायै नमः। विश्व-जनन्यै नमः। तुष्ट्यै नमः। दारिद्र्य-नाशिन्यै नमः। प्रीति-पुष्करिण्यै नमः। शान्तायै नमः। शुक्ल-माल्याम्बरायै नमः। श्रियै नमः। भास्कर्यै नमः। बिल्व-निलयायै नमः। वरारोहायै नमः। यशस्विन्यै नमः (८०) वसुन्धरायै नमः। उदाराङ्गायै नमः। हरिण्यै नमः। हेम-मालिन्यै नमः। धन-धान्य-कर्यै नमः। सिद्धये नमः। स्त्रैण-सौम्यायै नमः। शुभ-प्रदाये नमः। नृपवेश्म-गतानन्दायै नमः। वर-लक्ष्म्यै नमः। वसु-प्रदायै नमः। शुभायै नमः। हिरण्य-प्राकारायै नमः। समुद्र-तनयायै नमः। जयायै नमः। मङ्गला-देव्यै नमः। विष्णु-वक्षः-स्थल-स्थितायै नमः। विष्णु-पत्न्यै नमः। प्रसन्नाक्ष्यै नमः। नारायण-समाश्रितायै नमः। दारिद्र्य-ध्वंसिन्यै नमः। देव्यै नमः। सर्वोपद्रव-वारिण्यै नमः। नवदुर्गायै नमः। महाकाल्यै नमः। ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिकायै नमः। त्रिकाल-

ज्ञान-सम्पन्नायै नमः। भुवनेश्वर्यै नमः (१०८) स्वस्तिश्रीः।।

।। अथ श्रीगोदाष्टोत्तर-शत-नामावलिः ।।

श्रीरङ्ग-नायक्यै नमः। गोदायै नमः। विष्णु-चित्तात्म-जायै नमः। सत्यै नमः। गोपी-वेष-धरायै नमः। देव्यै नमः। भूसुतायै नमः। भोग-शालिन्यै नमः। तुलसी-वन-सञ्जातायै नमः। श्रीधन्वि-पुर-वासिन्यै नमः। श्रीभट्ट-नाथ-प्रियकर्यै नमः। श्रीकृष्ण-हित-भोगिन्यै नमः। आमुक्त-माल्य-दायै नमः। बालायै नमः। श्रीरङ्गनाथ-प्रियायै नमः। परायै नमः। विश्वम्भरायै नमः। कला-लापायै नमः। यतिराज-सहोदर्यै नमः। श्रीकृष्णानु-रक्तायै नमः (२०) सुभगायै नमः। सुलभ-श्रियै नमः। श्रीसुलक्षणायै नमः। लक्ष्मी-प्रिय-सख्यै नमः। श्यामायै नमः। दयाञ्चित-दृगञ्चलायै नमः। फाल्गुन्या-विर्भवायै नमः। रम्यायै नमः। धनुर्मास-कृत-व्रतायै नमः। चम्पका-शोक-पुन्नाग-मालती-विलसत्-कचायै नमः। अकार-त्रय-सम्पन्नायै नमः। नारायण-पदाश्रितायै नमः। श्रीमदष्टाक्षर-मन्त्रराज-स्थित-मनोधरायै नमः। मोक्ष-प्रदान-निपुणायै नमः। मनु-राजाधि-देवतायै नमः। ब्रह्माण्यै नमः। लोक-जनन्यै नमः। लीला-मानुष-रूपिण्यै नमः। ब्रह्म-ज्ञान-प्रदायै नमः। मायायै नमः (४०) सच्चिदानन्द-विग्रहायै नमः। महापति-व्रतायै नमः। विष्णु-गुण-कीर्तन-लोलुपायै नमः। प्रपन्नार्ति-हरायै नमः। नित्यायै नमः। वेद-सौध-विहारिण्यै नमः। श्रीरङ्गनाथ-माणिक्य-मञ्जरी-मञ्जु-भाषिण्यै नमः। पद्म-प्रियायै नमः। पद्म-हस्तायै नमः। वेदान्त-द्वय-बोधिन्यै नमः। सुप्रसन्नायै नमः। भगवत्यै नमः। श्रीजनार्दन-जीविकायै नमः। सुगन्धा-वयवायै नमः। चारु-

रङ्ग-मङ्गल-दीपिकायै नमः। ध्वज-वज्राङ्कुशाब्ज-मालति-मृदु-पादतल-लाञ्छितायै नमः। तारका-कार-नखरायै नमः। प्रवाल-मृदु-लाङ्गुल्यै नमः। कूर्मो-पमेय-पादोर्ध्व-भागायै नमः। शोभन-पार्ष्णि-कायै नमः। वेदार्थ-भाव-तत्त्वज्ञायै नमः (६०) लोका-राध्याङ्घ्रि-पङ्कजायै नमः। आनन्द-बुद्-बुदाकार-सुगुल्फायै नमः। परमांश-कायै नमः। अतुल-प्रतिमा-भास्वदङ्गुलीयक-भूषितायै नमः। मीन-केतन-तूणीर-चारुजङ्घा-विराजितायै नमः। कुब्ज-जानुद्वया-ढ्यायै नमः। स्वर-रम्भाभ-शक्ति-कायै नमः। विशाल-जघनायै नमः। पीतसु-श्रोण्यै नमः। मणि-मेखलायै नमः। आनन्द-सागरावर्त-गम्भीराम्भोज-नाभिकायै नमः। भास्वद्-बलि-त्रिकायै नमः। चारु-पूर्ण-लावण्य-संयुतायै नमः। नव-रोमावलि-राज्यै नमः। सुधा-कुम्भ-स्तन्यै नमः। कल्प-माला-निभ-भुजायै नमः। चन्द्र-खण्डन-खाञ्चितायै नमः। प्रवा-लाङ्गुलि-विन्यस्त-महा-रत्नाङ्गुलीय-कायै नमः। नवारुण-प्रवालाभ-पाणि-देश-समञ्चितायै नमः। कम्बु-कण्ठ्यै नमः (८०) सुचिबुकायै नमः। बिम्बोष्ठ्यै नमः। कुन्द-दन्तयुजे नमः। कारुण्य-रस-निष्यन्द-लोचन-द्वय-शालिन्यै नमः। कमनीय-प्रभा-भास्वच्-चाम्पेय-निभ-नासिकायै नमः। दर्पणाकार-विपुल-कपोल-द्वित-याञ्चितायै नमः। अनन्तार्क-प्रकाशोद्यन्-मणि-ताटङ्क-शोभितायै नमः। कोटि-सूर्याग्नि-सङ्काश-नाना-भूषण-भूषितायै नमः। सुगन्ध-वदनायै नमः। सुभ्रवे नमः। अर्ध-चन्द्र-ललाटि-कायै नमः। पूर्णचन्द्रा-ननायै नमः। नीलकुटि-लालक-शोभितायै नमः। सौन्दर्य-सीमा-विलसत्-कस्तूरी-तिलकोज्ज्वलायै नमः। धगद्धगाय-मानोद्यन्-मणि-

भूषण-राजितायै नमः। जाज्ज्वल्य-मान-सद्रत्न-दिव्य-चूडावतंस-कायै नमः। सूर्य-चन्द्रादि-कल्याण-भूषणाञ्चित-वेणिकायै नमः। अत्यर्कानल-तेजोवन्-मणि-कञ्चुक-धारिण्यै नमः। सद्रत्न-जाल-विद्योत-विद्युत्-पुञ्जाभ-शाटिकायै नमः। नाना-मणि-गणाकीर्ण-काञ्चनाङ्गद-भूषितायै नमः। कुङ्कुमागुरु-कस्तूरि-दिव्य-चन्दन-चर्चितायै नमः। स्वोचितो-ज्ज्वल-विद्योत-विचित्र-मणि-हारिण्यै नमः। परिभास्वद्-रत्न-पुञ्ज-दीप्त-स्वर्ण-निचोलि-कायै नमः। असङ्ख्येय-सुख-स्पर्श-सर्वावयव-भूषणायै नमः। मल्लिका-पारिजातादि-दिव्य-पुष्प-श्रियाञ्चितायै नमः। श्रीरङ्ग-निलयायै नमः। पूज्यायै नमः। दिव्य-देवी-सेवितायै नमः (१०८) स्वस्तिश्रीः।।

।। अथ श्रीरामानुजाष्टोत्तर-शतनामावलिः ।।

रामानुजाय नमः। पुष्कराक्षाय नमः। यतीन्द्राय नमः। करुणा-कराय नमः। कान्ति-मत्यात्म-जाय नमः। श्रीमते नमः। लीला-मानुष-विग्रहाय नमः। सर्व-शास्त्रार्थ-तत्त्वज्ञाय नमः। सर्वज्ञाय नमः। सज्जन-प्रियाय नमः। नारायण-कृपा-पात्राय नमः। श्रीभूतिपुर-नायकाय नमः। अनघाय नमः। भक्त-मन्दाराय नमः। केशवानन्द-वर्धनाय नमः। काञ्ची-पूर्ण-प्रिय-सखाय नमः। प्रणतार्ति-विनाशकाय नमः। पुण्य-सङ्कीर्तनाय नमः। पुण्याय नमः। ब्रह्म-राक्षस-मोचकाय नमः (२०) यादव-पादि-तापार्थ-वृक्ष-छेद-कुठारकाय नमः। अमोघाय नमः। लक्ष्मण-मुनये नमः। शारदा-शोक-नाशनाय नमः। निरन्तर-जनाज्ञान-विमोचन-विचक्षणाय नमः। वेदान्त-द्वय-सार-ज्ञाय नमः। वरदाम्बु-प्रदायकाय नमः। पराभि-प्राय-तत्त्वज्ञाय नमः।

यामुनाङ्गुलि-मोचकाय नमः। देवराज-कृपा-लब्ध-षड्-वाक्यार्थ-महोदधये नमः। पूर्णार्य-लब्ध-सन्मन्त्राय नमः। शौरि-पादाब्ज-षट्-पदाय नमः। त्रिदण्ड-धारिणे नमः। ब्रह्मज्ञाय नमः। ब्रह्मज्ञान-परायणाय नमः। रङ्गेश-कैङ्कर्य-रताय नमः। विभूति-द्वय-नायकाय नमः। गोष्ठि-पूर्ण-कृपा-लब्ध-मन्त्रराज-प्रकाशकाय नमः। वररङ्गानु-कम्पात्त-द्राविडाम्नाय-पारगाय नमः। माला-धरार्य-सुज्ञात-द्राविडाम्नाय-तत्त्वधिये नमः (४०) चतुःसप्त-शिष्या-ढ्याय नमः। पञ्चाचार्य-पदाश्रयाय नमः। प्रपीत-विष-तीर्थाम्बु-प्रकटी-कृत-वैभवाय नमः। प्रणतार्ति-हराचार्य-दत्त-भिक्षैक-भोजनाय नमः। पवित्री-कृत-कूरेशाय नमः। भागिनेय-त्रिदण्डकाय नमः। कूरेश-दाशरथ्यादि-चरमार्थ-प्रकाशकाय नमः। रङ्गेश-वेङ्कटेशादि-प्रकटी-कृत-वैभवाय नमः। देवराजार्चन-रताय नमः। मूक-मुक्ति-प्रदायकाय नमः। यज्ञमूर्ति-प्रतिष्ठात्रे नमः। मन्नाथाय नमः। धरणी-धराय नमः। वरदाचार्य-सद्भक्ताय नमः। यज्ञेशार्ति-विनाशकाय नमः। अनन्ताभीष्ट-फलदाय नमः। विट्ठलेश-प्रपूजिताय नमः। श्रीशैल-पूर्ण-करुणा-लब्ध-रामायणार्थ-काय नमः। प्रपत्ति-धर्मैक-रताय नमः। गोविन्दार्य-प्रियानुजाय नमः (६०) व्यास-सूत्रार्थ-तत्त्वज्ञाय नमः। बोधायन-मतानुगाय नमः। श्रीभाष्यादि-महाग्रन्थ-कारकाय नमः। कलि-नाशनाय नमः। अद्वैत-मत-विच्छेत्रे नमः। विशिष्टाद्वैत-पारगाय नमः। कुरङ्ग-नगरी-पूर्णमन्त्र-रत्नोप-देशिकाय नमः। विनाशितेतर-मताय नमः। शेषीकृत-रमापतये नमः। पुत्रीकृत-शठारातये नमः। शठजिते नमः। ऋण-मोचकाय नमः। भाषादत्त-हयग्रीवाय नमः। भाष्यकाराय

नमः। महायशसे नमः। पवित्रीकृत-भूभागाय नमः। कूर्मनाथ-प्रकाशकाय नमः। श्रीवेङ्कटाचलाधीश-शङ्खचक्र-प्रदायकाय नमः। श्रीवेङ्कटेश-श्वशुराय नमः। श्रीरामसख-देशिकाय नमः (८०) कृपामात्र-प्रसन्नार्याय नमः। गोपिका-मोक्ष-दायकाय नमः। समीचीनार्य-सच्छिष्य-सत्कृताय नमः। वैष्णव-प्रियाय नमः। कृमि-काण्ट-नृप-ध्वंसिने नमः। सर्व-मन्त्र-महोदधये नमः। अङ्गी-कृतान्ध्र-पूर्णार्याय नमः। शालग्राम-प्रतिष्ठिताय नमः। श्रीभक्त-ग्राम-पूर्णेशाय नमः। विष्णु-वर्धन-रक्षकाय नमः। बौद्ध-ध्वान्त-सहस्रांशवे नमः। शेष-रूप-प्रदर्शकाय नमः। नगरी-कृत-वेदाद्रये नमः। दिल्लीश्वर-समर्चिताय नमः। नारायण-प्रतिष्ठात्रे नमः। सम्पत्पुत्र-विमोचकाय नमः। सम्पत्कुमार-जनकाय नमः। साधु-लोक-शिखा-मणये नमः। सुप्रतिष्ठित-गोविन्द-राजाय नमः। पूर्ण-मनोरथाय नमः। गोदाग्र-जाय नमः। दिग्विजेत्रे नमः। गोदाभीष्ट-प्रपूरकाय नमः। सर्वसंशय-विच्छेत्रे नमः। विष्णु-लोक-प्रदायकाय नमः। अव्याहत-महद्-वर्त्मने नमः। यति-राजाय नमः। जगद्गुरवे नमः (१०८) स्वस्तिश्रीः।।

।। अथ श्रीलक्ष्मी-द्वादश-नामावलिः ।।

१. ॐ श्रियै नमः, २. ॐ अमृतोद्भवायै नमः, ३. ॐ कमलायै नमः, ४. ॐ चन्द्र-सोदर्यै नमः, ५. ॐ विष्णु-पत्न्यै नमः, ६. ॐ वैष्णव्यै नमः, ७. ॐ वरा-रोहायै नमः, ८. ॐ हरि-वल्लभायै नमः, ९. ॐ शार्ङ्गिण्यै नमः १०. ॐ देव-देविकायै नमः, ११. ॐ लोक-सुन्दर्यै नमः, १२. ॐ महालक्ष्म्यै नमः ।।

।। प्रार्थना ।।

नमः श्रियै लोक-धात्र्यै ब्रह्म-मात्रे नमो नमः ।
नमस्ते पद्म-नेत्रायै पद्म-मुख्यै नमो नमः ।।
नमो बिल्व-वन-स्थायै विष्णु-पत्न्यै नमो नमः ।
विचित्र-क्षौम-धारिण्यै पृथु-श्रोण्यै नमो नमः ।
पक्व-बिल्व-फलापीन-तुङ्ग-स्तन्यै नमो नमः ।।
सरक्त-पद्म-पत्राक्ष-कर-पाद-तले शुभे ।
संरक्ताङ्गद-केयूर-काञ्ची-नूपुर-शोभिते ।।
यक्ष-कर्दम-संलिप्ते सर्वाङ्गे कनकोज्ज्वले ।
माङ्गल्या-भरणै-श्चित्रैः मुक्ता-हारै-र्विभूषिते ।।
ताटङ्कै-रवतंसैश्च शोभ-मान-मुखाम्बुजे ।
पद्म-हस्ते नमस्तुभ्यं प्रसीद हरि-वल्लभे ।।
ऋग्-यजुः-साम-रूपायै विद्यायै ते नमो नमः ।
प्रसीदास्मान् कृपा-दृष्टि-पातै-रालोकयाब्धिजे ।।
नृत्य-वाद्यादि-गीतादि-पुराण-पठनादिभिः ।
राजोपचारैः सकलैः सन्तुष्टो भव राघव ।।
सन्तुष्टो भव राघव । सन्तुष्टो भव राघव ।।

।। अथ मङ्गलार्तिक्यम् ।।

लक्ष्मी-चरण-लाक्षाङ्क-साक्षि श्रीवत्स-वक्षसे ।
क्षेम-कराय सर्वेषां श्रीरङ्गेशाय मङ्गलम् ।।
श्रियःकान्ताय देवाय कल्याण-निधयेऽर्थिनाम् ।
श्रीवेङ्कट-निवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ।।१।।

लक्ष्मीश-विभ्रमा-लोल- सुभ्रू-विभ्रम-चक्षुषे ।
चक्षुषे सर्व-लोकानां वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ।।२।।
श्रीवैकुण्ठ-विरक्ताय स्वामि-पुष्करिणी-तटे ।
रमया रम-माणाय वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ।।३।।
कमला-कुच-कस्तूरी- कर्दमाङ्कित-वक्षसे ।
यादवाद्रि-निवासाय सम्पत्-पुत्राय मङ्गलम् ।।४।।
सुस्मिताय सुनासाय सुन्दरे सुदृशे भ्रुवे ।
सुललाट-किरीटाय रङ्ग-राजाय मङ्गलम् ।।५।।
अस्तु श्रीस्तन-कस्तूरी- वासना-वासि-तोरसे ।
श्रीहस्ति-गिरि-नाथाय देवराजाय मङ्गलम् ।।६।।
मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीय-गुणात्मने ।
चक्रवर्ति-तनूजाय सार्व-भौमाय मङ्गलम् ।।७।।
श्रीमद्-गोपाल-बालाय गोदाभीष्ट-प्रदायिने ।
श्रीसत्या-सहिता-यास्तु कृष्ण-देवाय मङ्गलम् ।८।
नीलाचल-निवासाय नित्याय परमात्मने ।
सुभद्रा-प्राण-नाथाय जगन्नाथाय मङ्गलम् ।।९।।
सुभद्रा-प्राण-नाथाय सुभद्रा-ह्वान-शालिने ।
बलभद्र-सनाथाय जगन्नाथाय मङ्गलम् ।।१०।।
कूरेश-कूरुका-नाथ-दाशरथ्यादि-देशिकैः ।
तच्छिष्या-भ्यर्थिने तस्मै यतिराजाय मङ्गलम् ।११।
शेषो वा सैन्य-नाथो वा श्रीपतिर्-वेति सात्त्विकैः
वितर्क्याय महाप्राज्ञैः भाष्यकाराय मङ्गलम् ।१२।

तुलामूलाय तीर्णाय तोषिता-खिल-सूरये ।
सौम्य-जामातृ-मुनये शेषांशा-यास्तु मङ्गलम् ।१३
मङ्गला-शासन-परैः मदाचार्य-पुरोगमैः ।
सर्वैश्च पूर्वै-राचार्यैः सत्कृता-यास्तु मङ्गलम् ।१४।

।। अथ गुरुपरम्परा ।।

सर्व-देश-दिशा-कालेष्व-व्याहत-पराक्रमा ।
रामानुजार्य-दिव्याज्ञा वर्धता-मभि-वर्धताम् ।।१।।
रामानुजार्य-दिव्याज्ञा प्रति-वासर-मुज्ज्वला ।
दिगन्त-व्यापिनी भूयात् सा हि लोक-हितैषिणी ।।२।।
श्रीमान् श्रीरङ्ग-श्रियम् अनुप-द्रवा-मनुदिनं संवर्धय ।
नमो रामानुजार्याय वेदान्तार्थ-प्रदायिने ।।३।।
नमः श्रीशैल-नाथाय कुन्ती-नगर-जन्मने ।
प्रसाद-लब्ध-परम-प्राप्य-कैङ्कर्य-शालिने ।।४।।
श्रीशैलेश-दया-पात्रं धी-भक्त्यादि-गुणार्णवम् ।
यतीन्द्रं प्रवणं वन्दे रम्यजा-मातरं मुनिम् ।।५।।
लक्ष्मी-नाथ-समारम्भां नाथ-यामुन-मध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य-पर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।६।।

यो नित्य-मच्युत-पदाम्बुज-युग्म-रुक्म-
व्यामोहतस्-तदित-राणि तृणाय मेने ।
अस्मद्गुरोर्-भगवतोऽस्य दयैक-सिन्धोः
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ।।७।।

माता पिता युवतय-स्तनया विभूतिः

सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम् ।
आद्यस्य नः कुलपतेर्-वकुला-भिरामं
श्रीमत्-तदङ्घ्रि-युगलं प्रणमामि मूर्ध्ना ।।८।।

भूतं सरश्च महदाह्वय-भट्टनाथ-
श्रीभक्ति-सार-कुल-शेखर-योगि-वाहान् ।
भक्ताङ्घ्रि-रेणु-पर-काल-यतीन्द्र-मिश्रान्
श्रीमत्-पराङ्कुश-मुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।९।

गुरु-मुख-मनधीत्य प्राह वेदान् अशेषान् ।
नरपति-परिक्लृप्तं शुल्क-मादा-तुकामाः ।
श्वसुर-ममर-वन्द्यं रङ्ग-नाथस्य साक्षाद्
द्विज-कुल-तिलकं तं विष्णु-चित्तं नमामि ।१०।

अस्मद्-देशिक-मस्मदीय-परमा-चार्यान् अशेषान् गुरून्
श्रीमल्लक्ष्मण-योगि-पुङ्गव-महापूर्णं मुनीनां मुनिम् ।
रामं पद्म-विलोचनं मुनिवरं नाथं शठ-द्वेषिणं
सेनेशं श्रिय-मिन्दिरा-सहचरं नारायणं संश्रये ।।११।।

वेदान्त- देशिक- कटाक्ष- विवृद्ध- बोधं
कान्तोप-यन्तृ-यमिनः करुणैक-पात्रम् ।
वत्सान्व - याय - मनवद्य - गुणै - रुपेतं
भक्त्या भजामि परवादि-भयङ्करार्यम् ।१२।

(जगदाचार्य श्रीत्रिदण्डी स्वामी श्रीविष्वक्सेनाचार्यजी महाराज)

काषायं यज्ञ-सूत्रं शुचि वपुषि तथा चोर्ध्व-पुण्ड्रं च भाले
यस्यास्ते दक्षहस्ते कलि-कुमति-गिरीन्द्रेन्द्र-वज्रं त्रिदण्डम् ।

संसाराग्नि-प्रशान्त्यै भृत-जल-ममलं दारु-पात्रं पवित्रं
श्रीविष्वक्-सेन-सूरेः पद-कमल-युगं श्रेयसे संश्रयामि ।१३।

(जगद्गुरु रामानुजाचार्य वेदान्त-मार्तण्ड
यतीन्द्र स्वामी श्रीरामनारायणाचार्यजी महाराज)

काषायाम्बर-दण्ड-मण्डित-करं लक्ष्मीश-पूजारतं
वेदान्त-द्वय-पारगं श्रित-निधिं वादीभ-सिंह्यायितम् ।
विष्वक्-सेन-यतीन्द्र-देशिक-कृपा-लब्धैक-सञ्जीवनं
वन्दे वन्द्य-जगद्गुरुं यतिवरं श्रीराम-नारायणम् ।।१४।।

(जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य जी महाराज)

शाण्डिल्या-ह्वय-वंश-वारिधि-विधुं श्रीकोसलेशार्चकं
विष्वक्-सेन-यतीन्द्र-देशिक-पद-द्वन्द्वार-विन्दाश्रितम् ।
स्वाचार्ये सुयतौ जगद्गुरु-वरे श्रीरामनारायणे
नित्यं सक्त-मतिं जगद्गुरु-वरं श्रीवासुदेवं भजे ।।१५।।

(स्वामी श्रीजयरामदास 'महन्त' जी महाराज)

श्रीमत्-कश्यप-वंश-वारिधि-विधुं श्रीराम-वर्णाङ्घ्रिपं
सीता-राघव-पाद-पद्म-युगले संसक्त-चित्तं मुनिम् ।
श्री-साकेत-निवास-दिव्य-रसिकं गो-साधु-सेवा-रतं
वन्दे श्रीजय-रामदास-यमिनं भक्त्या-न्वहं सादरम् ।।१६।।

(जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीराघवाचार्यजी महाराज)

श्रीमत्-कश्यप-गोत्र-लब्ध-जनुषं विद्या-विभूषोन्नतं
सच्छास्त्रार्णव-पारगामि-विदुषां मान्यं मनोज्ञ-श्रियम् ।
स्वाचार्ये च जगद्गुरौ बुध-वरे श्रीवासुदेवे रतं

वन्दे वन्द्यजगद्गुरुं मुनिवरं श्रीराघवार्यं गुरुम् ।।१७।।

श्रीमते रम्य-जामातृ-मुनीन्द्राय महात्मने ।

श्रीरङ्ग-वासिनं भूयाद् नित्य-श्रीर्-नित्य-मङ्गलम् ।१८।

मङ्गलं यतिराजाय श्रीभाष्यामृत-दायिने ।

सौलभ्य-परिपूर्णाय महापूर्णाय मङ्गलम् ।।१९।।

मङ्गलं गुरुवर्याय मङ्गलं गुणसिन्धवे ।

वादि-भीति-करार्याय नित्य-श्रीर्-नित्य-मङ्गलम् ।।

जयति यतिराज! फणिराजावतार-मणे!

प्रबल- पाखण्ड- तमो- हरण- भानो !

विजयी भव । विजयी भव । विजयी भव ।।

अमर्यादः क्षुद्रश्-चल-मति-रसूय-प्रसवभूः

कृतघ्नो दुर्मानी स्मर-पर-वशो वञ्चन-परः ।

नृशंसः पापिष्ठः कथ-मह-मितो दुःख-जलधेः

अपारा-दुत्तीर्णस्-तव परि-चरेयं चरणयोः ।।

अपराध-सहस्र-भाजनं पतितं भीम-भवार्ण-वोदरे ।

अगतिं शरणा-गतं हरे कृपया केवल-मात्म-सात्कुरु ।।

।। अथ श्रीवेङ्कटेश-सुप्रभातम् ।।

कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते । **उत्तिष्ठ नर-शार्दूल** कर्तव्यं दैव-माह्निकम् ।।१।। **उत्तिष्ठो-त्तिष्ठ गोविन्द** उत्तिष्ठ गरुडध्वज। **उत्तिष्ठ कमला-कान्त** त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु ।।२।। **मातः समस्त-जगतां मधुकैटभारेः** वक्षो-विहारिणि मनोहर-दिव्य-मूर्ते। **श्रीस्वामिनि श्रितजन-प्रियदान-शीले** श्रीवेङ्कटेश-दयिते तव सुप्रभातम् ।।३।।

तव सुप्रभात-मरविन्द-लोचने भवतु प्रसन्न-मुखचन्द्र-मण्डले। **विधि-शङ्करेन्द्र-वनिताभि-रर्चिते** वृष-शैलनाथ-दयिते दयानिधे ।।४।। **अत्र्यादि-सप्त ऋषयः समुपास्य सन्ध्याम्** आकाश-सिन्धु-कमलानि मनोहराणि । **आदाय पादयुग-मर्चयितुं प्रपन्नाः** शेषाद्रि-शेखर-विभो तव सुप्रभातम् ।।५।। **पञ्चाननाब्ज-भव-षण्मुख-वासवाद्याः** त्रैविक्रमादि-चरितं विबुधाः स्तुवन्ति । **भाषापतिः पठति वासर-शुद्धि-मारात्** शेषाद्रि-शेखर-विभो तव सुप्रभातम् ।।६।। **ईषत्-प्रफुल्ल-सरसीरुह-नारिकेल-**पूग-द्रुमादि-सुमनोहर-पालिकानाम् । **आवाति मन्द-मनिलः सह दिव्य-गन्धैः** शेषाद्रि-शेखर-विभो तव सुप्रभातम् ।।७।। **उन्मील्य नेत्र-युग-मुत्तम-पञ्जरस्थाः** पात्रा-वशिष्ट-कदली-फल-पायसानि । **भुक्त्वा सलील-मथ केलि-शुकाः पठन्ति** शेषाद्रि-शेखर-विभो तव सुप्रभातम् ।।८।। **तन्त्री-प्रकर्ष-मधुर-स्वनया विपञ्च्या** गायत्यनन्त-चरितं तव नारदोऽपि । **भाषा-समग्र-मसकृत्-करचार-रम्यं** शेषाद्रि-शेखर-विभो तव सुप्रभातम् ।।९।। **भृङ्गावली च मकरन्द-रसानुविद्ध-**झङ्कार-गीत-निनदैः सह सेवनाय। **निर्यात्युपान्त-सरसी-कमलो-दरेभ्यः** शेषाद्रि-शेखर-विभो तव सुप्रभातम् ।।१०।। **योषा-गणेन वर-दध्नि-विमथ्य-माने** घोषा-लयेषु दधि-मन्थन-तीव्र-घोषाः । **रोषात् कलिं विदधते ककुभश्च कुम्भाः** शेषाद्रि-शेखर-विभो तव सुप्रभातम् ।।११।। **पद्मेश-मित्र-शत-पत्र-गतालि-वर्गाः** हर्तुं श्रियं कुवल-यस्य निजाङ्ग-लक्ष्म्या। **भेरी-निनाद-मिव बिभ्रति तीव्र-नादं** शेषाद्रि-शेखर-विभो तव सुप्रभातम् ।।१२।। **श्रीमन्नभीष्ट-वरदाखिल-लोक-बन्धो** श्रीश्री-निवास

जगदेक-दयैक-सिन्धो । **श्रीदेवता-गृह-भुजान्तर दिव्य-मूर्ते** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।१३।। **श्रीस्वामि-पुष्करिणि-काऽऽप्लव-निर्मलाङ्गाः** श्रेयोऽर्थिनो हर-विरिञ्च-सनन्दनाद्याः। **द्वारे वसन्ति वर-वेत्र-हतोत्त-माङ्गाः** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।१४।। **श्रीशेष-शैल-गरुडाचल-वेङ्कटाद्रि-**नारायणाद्रि-वृषभाद्रि-वृषाद्रि-मुख्याम् । **आख्यां त्वदीय-वसते-रनिशं वदन्ति** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।१५।। **सेवापराः शिव-सुरेश-कृशानुधर्म-**रक्षोऽम्बु-नाथ-पवमान-धनाधि-नाथाः । **बद्धाञ्जलि-प्रविल-सन्निज-शीर्ष-देशाः** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।१६।। **घाटीषु ते विहग-राज-मृगाधि-राज-**नागाधि-राज-गजराज-हयाधि-राजाः । **स्व-स्वाधिकार-महिमाधिक-मर्थयन्ते** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।१७।। **सूर्येन्दु-भौम-बुध-वाक्पति-काव्य-सौरि-**स्वर्भानु-केतु-दिविषत्-परिषत्-प्रधानाः । **त्वद्-दासदास-चरमावधि-दास-दासाः** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।१८।। **त्वत्-पाद-धूलि-भरित-स्फुरितो-त्तमाङ्गाः** स्वर्गाप-वर्ग-निरपेक्ष-निजान्त-रङ्गाः । **कल्पा-गमाऽऽकल-नयाऽऽकुलतां लभन्ते** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।१९।। **त्वद्-गोपुराग्र-शिखराणि निरीक्ष-माणाः** स्वर्गाप-वर्ग-पदवीं परमां श्रयन्तः । **मर्त्या मनुष्य-भुवने मति-माश्रयन्ते** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।२०।। **श्रीभूमि-नायक दयादि-गुणा-मृताब्धे** देवाधि-देव जगदेक-शरण्य-मूर्ते । **श्रीमन् अनन्त गरुडादिभि-रर्चिताङ्घ्रे** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।२१।। **श्रीपद्मनाभ पुरुषोत्तम वासुदेव** वैकुण्ठ माधव जनार्दन चक्रपाणे ।

श्रीवत्स-चिह्न शरणागत-पारिजात श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।२२।। **कन्दर्प-दर्प-हर-सुन्दर दिव्य-मूर्ते** कान्ता-कुचाम्बु-रुह कुट्-मल-लोल-दृष्टे । **कल्याण-निर्मल-गुणाकर दिव्य-कीर्ते** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।२३।। **मीनाकृते कमठ-कोल नृसिंह-वर्णिन्** स्वामिन् परश्वथ-तपोधन रामचन्द्र । **शेषांश राम यदुनन्दन कल्कि-रूप** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।२४।। **एलाल-वङ्ग-घन-सार-सुगन्धि-तीर्थं** दिव्यं वियत्-सरिति हेम-घटेषु पूर्णम् । **धृत्वाऽद्य वैदिक-शिखा-मणयः प्रहृष्टाः** तिष्ठन्ति वेङ्कट-पते तव सुप्रभातम् ।।२५।। **भास्वा-नुदेति विकचानि सरोरु-हाणि** सम्पूरयन्ति निनदैः ककुभो विहङ्गाः। **श्रीवैष्णवाः सतत-मर्थित-मङ्गलास्ते** धामा-श्रयन्ति तव वेङ्कट सुप्रभातम् ।।२६।। **ब्रह्मादयः सुरवराः समहर्ष-यस्ते** सन्तः सनन्दन-मुखास्त्वथ योगिवर्याः । **धामान्तिके तव हि मङ्गल-वस्तु-हस्ताः** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।२७।। **लक्ष्मी-निवास निरवद्य-गुणैक-सिन्धो** संसार-सागर-समुत्तरणैक-सेतो । **वेदान्त-वेद्य निज-वैभव भक्त-भोग्य** श्री-वेङ्कटाचल-पते तव सुप्रभातम् ।।२८।। **इत्थं वृषा-चल-पते-रिह सुप्रभातं** ये मानवाः प्रति-दिनं पठितुं प्रवृत्ताः । **तेषां प्रभात-समये स्मृति-रङ्ग-भाजां** प्रज्ञां परार्थ-सुलभां परमां प्रसूते ।।२९।। **इति।।**

।। अथ श्रीवरद-वल्लभा-स्तोत्रम् ।।

(श्रीमद्-यामुन-मुनि-विरचिता चतुःश्लोकी)

यत्-पदाम्भो-रुह-ध्यान-विध्वस्ता-शेष-कल्मषः । **वस्तुता-मुप-यातोऽहं** यामुनेयं नमामि तम् ।। **कान्तस्ते पुरुषोत्तमः फणिपतिः**

शय्यासनं वाहनं वेदात्मा विहगेश्वरो जवनिका माया जगन्मोहिनी । **ब्रह्मेशादि-सुर-व्रजः सदयितस्त्वद्-दास-दासी-गणः** श्रीरित्येव च नाम ते भगवति ब्रूमः कथं त्वां वयम् ।।१।। **यस्यास्ते महिमान-मात्मन इव त्वद्-वल्लभोऽपि प्रभुः** नालं मातु-मियत्-तया निरवधिं नित्यानु-कूलं स्वतः । **तां त्वां दास इति प्रपन्न इति च स्तोष्याम्यहं निर्भयो** लोकै-केश्वरि लोकनाथ-दयिते दान्ते दयान्ते विदन् ।।२।। **ईषत्-त्वत्-करुणा-निरीक्षण-सुधा-सिन्धु-क्षणा-द्रक्ष्यते** नष्टं प्राक्तद-लाभत-स्त्रिभुवनं सम्प्रत्यनन्तो-दयम् । **श्रेयो नह्यरविन्द-लोचन-मनः कान्ता-प्रसादा-दृते** संसृत्याक्षर-वैष्णवा-ध्वसु नृणां सम्भाव्यते कर्हिचित् ।।३।। **शान्तानन्त-महाविभूति-परमं यद् ब्रह्म-रूपं हरेः** मूर्ते ब्रह्म ततोऽपि यत् प्रियतरं रूपं यदत्यद्भुतम् । **यान्यन्यानि यथासुखं विहरतो रूपाणि सर्वाणि ता-न्याहुः** स्वै-रनुरूप-रूप-विभवै-र्गाढोप-गूढानि ते ।।४।। **अकार-त्रय-सम्पन्नाम्** अरविन्द-निवासिनीम् । **अशेष-जगदीशित्रीं** वन्दे वरद-वल्लभाम् ।।५।। **ओं तत्सत् ।।**

।। अथ श्रीमद् आलवन्दार-स्तोत्रम् ।।

(श्रीमद्यामुनाचार्यानुगृहीतं स्तोत्ररत्नम्)

स्वादयन्निह सर्वेषां त्रय्यन्तार्थं सुदुर्ग्रहम् । **स्तोत्र-यामास योगीन्द्रस्तं** वन्दे यामुनाह्वयम् ।। **नमो नमो यामुनाय** यामुनाय नमो नमः । **नमो नमो यामुनाय** यामुनाय नमो नमः ।। **नमोऽचिन्त्याद्-भुता-क्लिष्ट-**ज्ञान-वैराग्य-राशये । **नाथाय मुनयेऽगाध-** भगवद्-भक्ति-सिन्धवे ।।१।। **तस्मै नमो मधु-जिदङ्घ्रि-सरोज-तत्त्व-**ज्ञानानुराग-महिमाति-शयान्त-सीम्ने । **नाथाय नाथ-मुनयेऽत्र परत्र चापि** नित्यं यदीय-

चरणौ शरणं मदीयम् ।।२।। **भूयो नमोऽपरि-मिताच्युत-भक्ति-तत्त्व-ज्ञानामृताब्धि-परिवाह-शुभै-र्वचोभिः । लोकेऽवतीर्ण-परमार्थ-समग्र-भक्ति-**योगाय नाथ-मुनये यमिनां वराय ।।३।। **तत्त्वेन यश्चिद-चिदीश्वर-तत्स्वभाव-**भोगापवर्ग-तदुपाय-गती-रुदारः । **सन्दर्शयन्-निर-मिमीत पुराण-रत्नं** तस्मै नमो मुनि-वराय पराशराय ।।४।। **माता पिता युवतय-स्तनया विभूतिः** सर्वं यदेव नियमेन मदन्व-यानाम् । **आद्यस्य नः कुलपते-र्वकुलाभि-रामं** श्रीमत् तदङ्घ्रि-युगलं प्रणमामि मूर्ध्ना ।।५।। **यन्मूर्ध्नि मे श्रुति-शिरस्सु च भाति यस्मिन्** अस्मन्-मनोरथ-पथः सकलः समेति । **स्तोष्यामि नः कुल-धनं कुल-दैवतं तत्** पादार-विन्द-मरविन्द-विलोचनस्य ।।६।। **तत्त्वेन यस्य महिमार्णव-शीकराणुः** शक्यो न मातुमपि शर्व-पितामहाद्यैः। **कर्तुं तदीय-महिम-स्तुति-मुद्यताय** मह्यं नमोऽस्तु कवये निरपत्र-पाय ।।७।। **यद्वा श्रमावधि यथामति वाप्य-शक्तः** स्तौम्येव-मेव खलु तेऽपि सदा स्तुवन्तः । **वेदाश्चतुर्-मुख-मुखाश्च महार्णवान्तः** को मज्जतो-रणु-कुलाचलयो-र्विशेषः ।।८।। **किं चैष शक्त्यति-शयेन न तेऽनुकम्प्यः** स्तोतापि तु स्तुति-कृतेन परिश्रमेण । **तत्र श्रमस्तु सुलभो मम मन्दबुद्धेः** इत्युद्यमोऽयमु-चितो मम चाब्जनेत्र ।।९।। **नावेक्षसे यदि ततो भुवनान्य-मूनि** नालं प्रभो भवितु-मेव कुतः प्रवृत्तिः । **एवं निसर्ग-सुहृदि त्वयि सर्व-जन्तोः** स्वामिन् विचित्र-मिद-माश्रित-वत्सलत्वम् ।।१०।। **स्वाभाविका-नवधि-काति-शयेशि-तृत्वं** नारायण त्वयि न मृष्यति वैदिकः कः । **ब्रह्मा शिवः शतमखः परम-स्वराडित्येतेऽपि यस्य महिमार्णव-विप्रु-षस्ते ।।११।। कः**

श्रीः श्रियः परम-सत्त्व-समाश्रयः कः कः पुण्डरीक-नयनः पुरुषोत्तमः कः । **कस्या-युतायुत-शतैक-कलांश-कांशे** विश्वं विचित्र-चिदचित्-प्रविभाग-वृत्तम् ।।१२।। **वेदाप-हार-गुरुपातक-दैत्य-पीडा-द्यापद्-विमोचन-महिष्ठ-फल-प्रदानैः । कोऽन्यः प्रजा-पशु-पती परिपाति कस्य** पादो-दकेन स शिवः स्वशिरो-धृतेन ।।१३।। **कस्योदरे हर-विरिञ्चि-मुखः प्रपञ्चः** को रक्षती-मम-जनिष्ट च कस्य नाभेः। **क्रान्त्वा निगीर्य पुनरुद्-गिरति त्वदन्यः** कः केन वैष परवा-निति शक्य-शङ्कः ।।१४।। **त्वां शील-रूप-चरितैः परम-प्रकृष्ट-**सत्त्वेन सात्विक-तया प्रबलैश्च शास्त्रैः । **प्रख्यात-दैव-परमार्थ-विदां मतैश्च** नैवासुर-प्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धुम् ।।१५।। **उल्लङ्घित-त्रिविध-सीम-समाति-शायि-**सम्भावनं तव परि-व्रढिम-स्वभावम् । **माया-बलेन भवतापि निगूह्य-मानं** पश्यन्ति केचि-दनिशं त्वदनन्य-भावाः ।।१६।। **यदण्ड-मण्डान्तर-गोचरं च यद्** दशोत्तराण्या-वरणानि यानि च । **गुणाः प्रधानं पुरुषः परं पदं** परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः ।।१७।। **वशी वदान्यो गुणवा-नृजुः शुचिः** मृदुर्-दयालु-र्मधुरः स्थिरः समः। **कृती कृतज्ञ-स्त्वमसि स्वभावतः** समस्त-कल्याण-गुणामृतो-दधिः ।।१८।। **उपर्यु-पर्यब्ज-भुवोऽपि पूरुषान्** प्रकल्प्य ते ये शत-मित्यनु-क्रमात् । **गिरस्त्व-देकैक-गुणाव-धीप्सया** सदास्थिता नो-द्यमतोऽतिशेरते ।।१९।। **त्वदा-श्रितानां जगदुद्भव-स्थिति-**प्रणाश-संसार-विमोचनादयः । **भवन्ति लीला-विधयश्च वैदिकाः** त्वदीय-गम्भीर-मनोऽनुसारिणः ।।२०।। **नमो नमो वाङ्-मनसाति-भूमये** नमो नमो वाङ्-मनसैक-भूमये । **नमो नमोऽनन्त-महा-विभूतये**

नमो नमोऽनन्त-दयैक-सिन्धवे ।।२१।। **न धर्म-निष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी** न भक्तिमान् त्वच्-चरणा-रविन्दे। **अकिञ्चनोऽनन्य-गतिः शरण्य** त्वत्-पाद-मूलं शरणं प्रपद्ये ।।२२।। **न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके** सहस्त्रशो यन्न मया व्यधायि । **सोऽहं विपाका-वसरे मुकुन्द** क्रन्दामि सम्प्रत्य-गति-स्तवाग्रे ।।२३।। **निमज्जतोऽनन्त-भवार्ण-वान्तः** चिराय मे कूल-मिवासि लब्धः । **त्वयापि लब्धं भगवन् इदानीम्** अनुत्तमं पात्र-मिदं दयायाः ।।२४।। **अभूत-पूर्वं मम भावि किं वा** सर्वं सहे मे सहजं हि दुःखम् । **किन्तु त्वदग्रे शरणा-गतानां** पराभवो नाथ न तेऽनुरूपः ।।२५।। **निरास-कस्यापि न ताव-दुत्सहे** महेश हातुं तव पाद-पङ्कजम् । **रूषा निरस्तोऽपि शिशुः स्तनन्धयो** न जातु मातु-श्चरणौ जिहासति ।।२६।। **तवामृत-स्यन्दिनि पाद-पङ्कजे** निवेशि-तात्मा कथमन्य-दिच्छति । **स्थितेऽरविन्दे मकरन्द-निर्भरे** मधुव्रतो नेक्षु-रकं हि वीक्षते ।।२७।। **त्वदङ्घ्रि-मुद्दिश्य कदापि केनचिद्** यथा तथा वापि सकृत् कृतोऽञ्जलिः। **तदैव मुष्णात्य-शुभान्य-शेषतः** शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते ।।२८।। **उदीर्ण-संसार-दवाशु-शुक्षणिं** क्षणेन निर्व्याप्य परां च निर्वृतिम् । **प्रयच्छति त्वच्-चरणा-रुणाम्बुज-द्वयानु-रागामृत-सिन्धु-शीकरः** ।।२९।। **विलास-विक्रान्त-परावरा-लयं** नमस्य-दार्ति-क्षपणे कृत-क्षणम् । **धनं मदीयं तव पाद-पङ्कजं** कदा नु साक्षात्-करवाणि चक्षुषा ।।३०।। **कदा पुनः शङ्ख-रथाङ्ग-कल्पक-ध्वजार-विन्दाङ्कुश-वज्र-लाञ्छनम् । त्रिविक्रम त्वच्-चरणाम्बुज-द्वयं** मदीय-मूर्धान-मलङ्करिष्यति ।।३१।। **विराज-मानोज्ज्वल-पीत-वाससं** स्मिता-

तसी-सून-समाम-लच्छविम् । **निमग्न-नाभिं तनु-मध्य-मुन्नतं** विशाल-वक्षः स्थल-शोभि-लक्षणम् ।।३२।। **चकासतं ज्याकिण-कर्कशैः शुभैः** चतुर्भि-राजानु-विलम्बिभिर्-भुजैः । **प्रिया-वतंसोत्पल-कर्ण-भूषण-**श्लथाल-काबन्ध-विमर्द-शंसिभिः ।।३३।। **उदग्र-पीनांस-विलम्बि-कुण्डला-**लकावली-बन्धु-रकम्बु-कन्धरम् । **मुख-श्रिया न्यक्कृत-पूर्ण-निर्मला-**मृतांशु-बिम्बाम्बु-रुहो-ज्ज्वल-श्रियम् ।।३४।। **प्रबुद्ध-मुग्धाम्बुज-चारु-लोचनं** सविभ्रम-भ्रू-लत-मुज्ज्वलाधरम् । **शुचिस्मितं कोमल-गण्ड-मुन्नसं** ललाट-पर्यन्त-विलम्बि-तालकम् ।।३५।। **स्फुरत्-किरीटाङ्गद-हार-कण्ठिका-**मणीन्द्र-काञ्ची-गुण-नूपुरादिभिः। **रथाङ्ग-शङ्खासि-गदा-धनुर्वरैः** लसत्तुलस्या-वनमाल-योज्ज्वलम् ।।३६।। **चकर्थ यस्या भवनं भुजान्तरं** तव प्रियं धाम यदीय-जन्मभूः। **जगत् समस्तं यदपाङ्ग-संश्रयं** यदर्थ-मम्भोधि-रमन्थ्य-बन्धि च ।।३७।। **स्व-वैश्व-रूप्येण सदाऽनुभूतया-**प्यपूर्ववद्-विस्मय-माद-धानया । **गुणेन रूपेण विलास-चेष्टितैः** सदा तवैवो-चितया तव श्रिया ।।३८।। **तया सहासीन-मनन्त-भोगिनि** प्रकृष्ट-विज्ञान-बलैक-धामनि । **फणा-मणि-त्रात-मयूख-मण्डल-**प्रकाश-मानोदर-दिव्य-धामनि ।।३९।। **निवास-शय्यासन-पादुकांशुको-**पधान-वर्षातप-वारणादिभिः। **शरीर-भेदैस्-तव शेषतां गतैर्-**यथोचितं शेष इतीर्यते जनैः ।।४०।। **दासः सखा वाहन-मासनं ध्वजो** यस्ते वितानं व्यजनं त्रयीमयः । **उपस्थितं तेन पुरो गरुत्मता** त्वदङ्घ्रि-सम्मर्द-किणाङ्क-शोभिना ।।४१।। **त्वदीय-भुक्तोज्झित-शेष-भोजिना** त्वया निवृष्टात्म-भरेण यद्यथा । **प्रियेण सेना-पतिना न्यवेदि तत्तथाऽ-**

नुजानन्त-मुदार-वीक्षणैः ।।४२।। **हताखिल-क्लेश-मलैः स्वभावतः** सदानु-कूल्यैक-रसैस्त-वोचितैः । **गृहीत-तत्तत्-परिचार-साधनैर्-** निषेव्य-माणं सचिवैर्-यथोचितम् ।।४३।। **अपूर्व-नाना-रस-भाव-निर्भर-प्रबद्धया** मुग्ध-विदग्ध-लीलया । **क्षणाणुवत्-क्षिप्त-परादि-कालया** प्रहर्षयन्तं महिषीं महाभुजम् ।।४४।। **अचिन्त्य-दिव्याद्भुत-नित्य-यौवन-**स्वभाव-लावण्य-मया-मृतोदधिम् । **श्रियः श्रियं भक्त-जनैक-जीवितं** समर्थ-मापत्-सख-मर्थि-कल्पकम् ।।४५।। **भवन्त-मेवानुचरन् निरन्तर-**प्रशान्त-निःशेष-मनोरथान्तरः। **कदाह-मैकान्तिक-नित्य-किङ्करः** प्रहर्ष-यिष्यामि सनाथ-जीवितः ।।४६।। **धिग्-शुचि-मविनीतं निर्दयं माम-लज्जं** परम-पुरुष योऽहं योगि-वर्याग्र-गण्यैः । **विधि-शिव-सनकाद्यैर्-ध्यातु-मत्यन्त-दूरं** तव परिजन-भावं कामये कामवृत्तः ।।४७।। **अपराध-सहस्र-भाजनं** पतितं भीम-भवार्ण-वोदरे । **अगतिं शरणागतं हरे** कृपया केवल-मात्मसात् कुरु ।।४८।। **अविवेक-घनान्ध-दिङ्-मुखे** बहुधा सन्तत-दुःख-वर्षिणि । **भगवन् भव-दुर्दिने पथ-**स्खलितं मा-मवलोक-याच्युत ।।४९।। **न मृषा परमार्थ-मेव मे** शृणु विज्ञापन-मेक-मग्रतः । **यदि मे न दयिष्यसे ततो** दयनीय-स्तव नाथ दुर्लभः ।।५०।। **तदहं त्वदृते न नाथवान्** मदृते त्वं दयनीय-वान् न च । **विधि-निर्मित-मेतदन्यं** भगवन् पालय मा स्म जैह्ययया ।।५१।। **वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा** गुणतोऽसानि यथा-तथा-विधः । **तदयं तव पाद-पद्मयोः** अहमद्यैव मया समर्पितः ।।५२।। **मम नाथ यदस्ति योऽस्म्यहं** सकलं तद्धि तवैव माधव । **नियत-स्वमिति प्रबुद्ध-धीः**

अथवा किं नु समर्पयामि ते ।।५३।। **अवबोधित-वानिमां यथा** मयि नित्यां भवदीयतां स्वयम् । **कृपयैव-मनन्य-भोग्यतां** भगवन् भक्ति-मपि प्रयच्छ मे ।।५४।। **तव-दास्य-सुखैक-सङ्गिनां** भवनेष्व-स्त्वपि कीट-जन्म मे । **इतरा-वसथेषु मास्म भू-**दपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना ।।५५।। **सकृत् त्वदाकार-विलोक-नाशया** तृणीकृता-नुत्तम-भुक्ति-मुक्तिभिः । **महात्मभिर्-मामवलोक्यतां नय** क्षणेऽपि ते यद् विरहोऽतिदुस्सहः ।।५६।। **न देहं न प्राणान्न च सुख-मशेषा-भिलषितं** न चात्मानं नान्यत् किमपि तव शेषत्व-विभवात् । **बहिर्भूतं नाथ क्षणमपि सहे यातु शतधा** विनाशं तत्सत्यं मधु-मथन विज्ञापन-मिदम् ।।५७।। **दुरन्त-स्यानादे-रपरिहरणी-यस्य महतो** विहीना-चारोऽहं नृप-शुर-शुभस्या-स्पदमपि । **दया-सिन्धो बन्धो निरवधिक-वात्सल्य-जलधे** तव स्मारं स्मारं गुणगण-मितीच्छामि गतभीः ।।५८।। **अनिच्छन्नप्येवं यदि पुनरिती-च्छन्निव रजः** तमश्छन्न-च्छद्म-स्तुति-वचन-भङ्गी-मरचयम् । **तथा-पीत्थं रूपं वचन-मवलम्ब्यापि कृपया** त्वमेवैवं भूतं धरणि-धर मे शिक्षय मनः ।।५९।। **पिता त्वं माता त्वं दयित तनयस्त्वं प्रियसुहृत्** त्वमेव त्वं मित्रं गुरुरसि गतिश्चासि जगताम् । **त्वदीय-स्त्वद्-भृत्य-स्तव परिजन-स्त्वद्-गति-रहं** प्रपन्न-श्चैवं सत्यहमपि तवैवास्मि हि भरः ।।६०।। **जनित्वाऽहं वंशे महति जगति ख्यात-यशसां** शुचीनां युक्तानां गुण-पुरुष-तत्त्व-स्थिति-विदाम् । **निसर्गा-देव त्वच्चरण-कमलैकान्त-मनसाम्** अधोधः पापात्मा शरणद निमज्जामि तमसि ।।६१।। **अमर्यादः क्षुद्र-श्चलमति-रसूया-प्रसवभूः** कृतघ्नो दुर्मानी स्मर-परवशो

वञ्चनपरः । **नृशंसः पापिष्टः कथ-मह-मितो दुःख-जलधेः** अपारा-दुत्तीर्ण-स्तव परिचरेयं चरणयोः ।।६२।। **रघुवर यदभूस्त्वं तादृशो वायसस्य** प्रणत इति दयालुर्-यच्च चैद्यस्य कृष्णः। **प्रतिभव-मपराद्धुर्-मुग्ध-सायुज्य-दोऽभूः** वद किमपद-मागस्तस्य तेऽस्ति क्षमायाः ।।६३।। **ननु प्रपन्नः सकृदेव नाथ** तवाह-मस्मीति च याचमानः। **तवानुकम्प्यः स्मरतः प्रतिज्ञां** मदेक-वर्जं किमिदं व्रतं ते ।।६४।। **अकृत्रिम-त्वच्-चरणा-रविन्द-प्रेम-प्रकर्षा-वधि-मात्म-वन्तम् । पितामहं नाथ-मुनिं विलोक्य** प्रसीद मद्-वृत्त-मचिन्त-यित्वा ।।६५।। **यत्-पदाम्भो-रुह-ध्यान-**विध्वस्ता-शेष-कल्मषः। **वस्तुता-मुप-यातोऽहं** यामुनेयं नमामि तम् ।। **ओं तत्सत् ।।**

।। श्रीकुरेशाचार्यानुगृहीतः श्रीस्तवः ।।

स्वस्ति श्रीर्-दिशता-दशेष-जगतां स्वर्गाप-वर्ग-स्थितीः स्वर्गं दुर्गति-माप-वर्गिक-पदं सर्वं च कुर्वन् हरिः । **यस्या वीक्ष्य मुखं तदिङ्गित-पराधीनो विधत्तेऽखिलं** क्रीडेयं खलु नान्यथाऽस्य रसदा स्यादैक-रस्यात् तया ।।१।। **हे श्रीर्देवि समस्त-लोक-जननि त्वां स्तोतु-मीहा-महे** युक्तां भावय भारतीं प्रगुणय प्रेम-प्रधानां धियम् । **भक्तिं बन्धय नन्द-याश्रित-मिमं दासं जनं तावकं** लक्ष्यं लक्ष्मि कटाक्ष-वीचि-विसृतेस्ते स्याम चामी वयम् ।।२।। **स्तोत्रं नाम किमा-मनन्ति कवयो यद्यन्य-दीयान् गुणा-**नन्यत्र त्वसतोऽधिरोप्य भणितिः सा तर्हि वन्ध्या त्वयि । **सम्यक्-सत्य-गुणाभि-वर्णन-मथो ब्रूयुः कथं तादृशी** वाग्-वाचस्पति-नाप्य-शक्य-रचना त्वत्-सद्-गुणार्णो-निधौ ।।३।। **ये वाचां मनसां च दुर्ग्रह-तया ख्याता गुणास्-**

तावकाः तानेव प्रति साम्बु-जिह्म-मुदिता यन्मा-मिका भारती । **हास्यं तत्तु न मन्महे न हि चकोर्येकाऽखिलां** चन्द्रिकां नालं पातु-मिति प्रगृह्य रसना-मासीत सत्यां तृषि ।।४।। **क्षोदीया-नपि दुष्ट-बुद्धि-रपि निःस्नेहोऽप्य-नीहोऽपि ते** कीर्तिं देवि लिहन्नहं न च बिभेम्-यज्ञो न जिह्रेमि च । **दुष्येत् सा तु न तावता न हि शुना लीढाऽपि भागीरथी** दुष्येच्-चापि न लज्जते न च बिभे-त्यार्ति-स्तु शाम्ये-च्छुनः ।।५।। **ऐश्वर्यं महदेव वाऽल्प-मथवा दृश्येत पुंसां हि यत्** तल्लक्ष्म्याः समु-दीक्षणात् तव यतः सार्वत्रिकं वर्तते । **तेनै-तेन न विस्मये-महि जगन्नाथोऽपि नारायणो** धन्यं मन्यत ईक्षणात् तव यतः स्वात्मान-मात्मेश्वरः ।।६।। **ऐश्वर्यं यदशेष-पुंसि यदिदं सौन्दर्य-लावण्ययो** रूपं यच्च हि मङ्गलं किमपि यल्लोके सदित्युच्यते। **तत्सर्वं त्वदधीन-मेव यदतः श्रीरित्य-भेदेन वा** यद्वा श्रीमदि-तीदृशेन वचसा देवि प्रथा-मश्नुते ।।७।। **देवि त्वन्-महिमा-वधिर्न हरिणा नापि त्वया ज्ञायते** यद्यप्येव-मथापि नैव युवयोः सर्वज्ञता हीयते । **यन्नास्त्येव तदज्ञता-मनु-गुणां सर्वज्ञ-ताया विदुः** व्योमामभोज-मिदन्तया खलु विदन् भ्रान्तोऽय-मित्युच्यते ।।८।। **लोके वनस्पति-बृहस्पति-तारतम्यं** यस्याः कटाक्ष-परिणाम-मुदाहरन्ति । **सा भारती भगवती तु यदीय-दासी** तां देवदेव-महिषीं श्रिय-माश्रयामः ।।९।। **यस्याः कटाक्ष-मृदु-वीक्षण-दीक्षितेन** सद्यः समुल्लसित-पल्लव-मुल्ललास । **विश्वं विपर्यय-समुत्थ-विपर्ययं त्वां** तां देवदेव-महिषीं श्रिय-माश्रयामः ।।१०।।

।। श्रीकुलशेखरकृतं मुकुन्दमालास्तोत्रम् ।।

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति भक्त-प्रियेति भव-लुण्ठन-कोविदेति।

नाथेति नाग-शयनेति जगन्निवासे- त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द ।।१।। **जयतु जयतु देवो देवकी-नन्दनोऽयं** जयतु जयतु कृष्णो वृष्णि-वंश-प्रदीपः । **जयतु जयतु मेघ-श्यामलः कोमलाङ्गो** जयतु जयतु पृथ्वी-भार-नाशो मुकुन्दः ।।२।। **मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे** भवन्त-मेकान्त-मियन्त-मर्थम् । **अविस्मृति-स्त्वच्-चरणार-विन्दे** भवे भवे मेऽस्तु भवत्-प्रसादात् ।।३।। **नाहं वन्दे तव चरणयोर्-द्वन्द्व-मद्वन्द्व-हेतोः** कुम्भी-पाकं गुरुमपि हरे नारकं नाप-नेतुम् । **रम्या-रामा-मृदु-तनु-लता नन्दने नापि रन्तुं** भावे भावे हृदय-भवने भाव-येयं भवन्तम् ।।४।। **नास्था धर्मे न वसु-निचये नैव कामोप-भोगे** यद् भाव्यं तद् भवतु भगवन् पूर्व-कर्मानु-रूपम् । **एतत् प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्म-जन्मान्तरेऽपि** त्वत्-पादाम्भो-रुह-युगगता निश्चला भक्ति-रस्तु ।।५।। **दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो** नरके वा नर-कान्तक प्रकामम् । **अवधीरित-शारदार-विन्दौ** चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ।।६।। **कृष्ण त्वदीय-पद-पङ्कज-पञ्जरान्तम्** अद्यैव मे विशतु मानस-राजहंसः । **प्राण-प्रयाण-समये कफ-वात-पित्तैः** कण्ठा-वरोधन-विधौ स्मरणं कुतस्ते ।।७।। **चिन्तयामि हरिमेव सन्ततं** मन्द-हास-मुदिता-ननाम्बुजम् । **नन्दगोप-तनयं परात्परं** नारदादि-मुनि-वृन्द-वन्दितम् ।।८।। **कर-चरण-सरोजे कान्तिमन्-नेत्र-मीने** श्रम-मुषि भुज-वीचि-व्याकुलेऽगाध-मार्गे । **हरि-सरसि विगाह्या-पीय तेजो-जलौघं** भव-मरु-परिखिन्नः क्लेश-मद्य त्यजामि ।।९।। **सरसिज-नयने सशङ्ख-चक्रे** मुरभिदि मा विरमस्व चित्त रन्तुम् । **सुखतर-मपरं न जातु जाने** हरिचरण-

स्मरणामृतेन तुल्यम् ।।१०।। **माभीर्-मन्द-मनो विचिन्त्य बहुधा यामीश्चिरं यातनाः** नामी नः प्रभवन्ति पाप-रिपवः स्वामी ननु श्रीधरः। **आलस्यं व्यपनीय भक्ति-सुलभं ध्यायस्व नारायणं** लोकस्य व्यसना-पनोदन-करो दासस्य किं न क्षमः ।।११।। **भव-जलधि-गतानां द्वन्द्व-वाता-हतानां** सुत-दुहितृ-कलत्र-त्राण- भारार्दि-तानाम् । **विषम-विषय-तोये मज्जता-मप्लवानां** भवतु शरण-मेको विष्णु-पोतो नराणाम् ।।१२।। **भव-जलधि-मगाधं दुस्तरं निस्तरेयं** कथमह-मिति चेतो मा स्म गाः कातरत्वम् । **सरसिज-दृशि देवे तारकी भक्ति-रेका** नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ।।१३।। **तृष्णा-तोये मदन-पवनोद्धूत-मोहोर्मि-माले** दारावर्ते तनय-सहज-ग्राह-सङ्काकुले च । **संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधामन्** पादाम्भोजे वरद भवतो भक्ति-नावं प्रयच्छ ।।१४।। **माद्राक्षं क्षीण-पुण्यान् क्षण-मपि भवतो भक्ति-हीनान् पदाब्जे** माश्रौषं श्राव्य-बन्धं तव चरित-मपास्यान्य-दाख्यान-जातम् । **मास्मार्षं माधव त्वामपि भुवनपते चेतसा-पह्नु-वानान्** माभूवं त्वत्-सपर्या-परिकर-रहितो जन्म-जन्मान्तरेऽपि ।।१५।। **जिह्वे कीर्तय केशवं मुर-रिपुं चेतो भज श्रीधरं** पाणि-द्वन्द्व समर्चयाच्युत-कथाः श्रोत्रद्वय त्वं शृणु । **कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्-गच्छाङ्घ्रि-युग्मालयं** जिघ्र घ्राण मुकुन्द-पाद-तुलसीं मूर्धन् नमाधो-क्षजम् ।।१६।। **हे लोकाः श्रुणुत प्रसूति-मरण-व्याधे-श्चिकित्सा-मिमां** योगज्ञाः समुदा-हरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादयः। **अन्तर्ज्योति-रमेय-मेक-ममृतं कृष्णाख्य-मापीयतां** तत्पीतं परमौषधं वितनुते निर्वाण-मत्यन्तिकम् ।।१७।। **हे मर्त्याः परमं हितं श्रुणुत**

वो वक्ष्यामि सङ्क्षेपतः संसारार्णव-माप-दूर्मि-बहुलं सम्यक् प्रविश्य स्थिताः । **नाना-ज्ञान-मपास्य चेतसि नमो नारायणा-येत्यमुं** मन्त्रं सप्रणवं प्रणाम-सहितं प्रावर्तयध्वं मुहुः ।।१८।। **पृथ्वी-रेणु-रणुः पयांसि कणिकाः फल्गु-स्फुलिङ्गोऽनलः** तेजो निःश्वसनं मरुत् तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः । **क्षुद्रा रुद्र-पितामह-प्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुरा** दृष्टे यत्र स तावको विजयते भूमा-वधू-तावधिः ।।१९।। **बद्धे-नाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः** कण्ठेन स्वर-गद्गदेन नयने-नोद्गीर्ण-बाष्पाम्बुना । **नित्यं त्वच्-चरणारविन्द-युगल-ध्यानामृता-स्वादिनाम्** अस्माकं सरसी-रुहाक्ष सततं सम्पद्यतां जीवितम् ।।२०।। **हे गोपालक हे कृपा-जलनिधे हे सिन्धु-कन्या-पते** हे कंसान्तक हे गजेन्द्र-करुणा-पारीण हे माधव । **हे रामानुज हे जगत्-त्रय-गुरो हे पुण्डरीकाक्ष मां** हे गोपी-जन-नाथ पालय परं जानामि न त्वां विना ।।२१।। **भक्तापाय-भुजङ्ग-गारुड-मणिस्-त्रैलोक्य-रक्षामणिः** गोपी-लोचन-चातकाम्बुद-मणिः सौन्दर्य-मुद्रा-मणिः । **यः कान्ता-मणि-रुक्मिणी-घन-कुच-द्वन्द्वैक-भूषा-मणिः** श्रेयो देव-शिखा-मणिर्-दिशतु नो गोपाल-चूडामणिः ।।२२।। **शत्रुच्-छेदैक-मन्त्रं सकल-मुपनिषद्-वाक्य-सम्पूज्य-मन्त्रं** संसारोत्तार-मन्त्रं समुचित-तमसः सङ्ग-निर्याण-मन्त्रम् । **सर्वैश्वर्यैक-मन्त्रं व्यसन-भुजग-सन्दष्ट-सन्त्राण-मन्त्रं** जिह्वे श्रीकृष्ण-मन्त्रं जप जप सततं जन्म-साफल्य-मन्त्रम् ।।२३।। **व्यामोह-प्रशमौषधं मुनि-मनोवृत्ति-प्रवृत्त्यौषधं** दैत्येन्द्रार्ति-करौषधं त्रिजगतां सञ्जीवनै-कौषधम् । **भक्तार्ति-प्रशमौषधं भव-भय-प्रध्वंसि दिव्यौषधं** श्रेयः-प्राप्ति-करौषधं पिब मनः श्रीकृष्ण-

दिव्यौषधम् ।।२४।। **आम्नायाभ्यसना-न्यरण्य-रुदितं वेद-व्रतान्यन्-वहं** मेदश्छेद-फलानि पूर्त-विधयः सर्वं हुतं भस्मनि । **तीर्थाना-मव-गाहनानि च गज-स्नानं विना यत्पद-**द्वन्द्वाम्भो-रुह-संस्मृतिं विजयते देवः स नारायणः ।।२५।। **श्रीमन्नाम प्रोच्य नारायणाख्यं** केन प्रापुर्-वाञ्छितं पापिनोऽपि । **हा नः पूर्वं वाक्प्रवृत्ता न तस्मिन्** तेन प्राप्तं गर्भ-वासादि-दुःखम् ।।२६।। **मज्जन्मनः फल-मिदं मधु-कैटभारे** मत्-प्रार्थनीय-मदनुग्रह एष एव । **त्वद् भृत्य-भृत्य-परिचारक-भृत्य-भृत्य-**भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ।।२७।। **नाथे नः पुरुषोत्तमे त्रिजगता-मेकाधिपे चेतसा** सेव्ये स्वस्य पदस्य दातरि परे नारायणे तिष्ठति । **यं कञ्चित् पुरुषाधमं कतिपय-ग्रामेश-मल्पार्थदं** सेवायै मृगया-महे नरमहो मूढा वराका वयम् ।।२८।। **मदन परिहर स्थितिं मदीये** मनसि मुकुन्द-पदारविन्द-धाम्नि । **हर-नयन-कृशानुना कृशोऽसि** स्मरसि न चक्र-पराक्रमं मुरारेः ।।२९।। **तत्त्वं ब्रूवाणानि परं परस्ताद्** मधु क्षरन्तीव मुदा-वहानि । **प्रवर्तय प्राञ्जलि-रस्मि जिह्वे** नामानि नारायण-गोचराणि ।।३०।। **इदं शरीरं परिणाम-पेशलं** पतत्य-वश्यं परिणाम-पेशलम् । **किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते** निरामयं कृष्ण-रसायनं पिब ।।३१।। **दारा वाराकर-वरसुता ते तनूजो विरिञ्चिः** स्तोता वेदस्तव सुर-गणो भृत्यवर्गः प्रसादः । **मुक्तिर्-माया जगद-विकलं तावकी देवकी ते** माता मित्रं बलरिपु-सुतः तत्त्वदन्यं न जाने ।।३२।। **कृष्णो रक्षतु नो जगत्-त्रय-गुरुः कृष्णं नमध्वं सदा** कृष्णे-नाखिल-शत्रवो विनिहताः कृष्णाय तस्मै नमः । **कृष्णादेव समुत्थितं जगदिदं कृष्णस्य दासोऽस्म्यहं**

कृष्णे तिष्ठति विश्वमे-तदखिलं हे कृष्ण रक्षस्व माम् ।।३३।। **तत्त्वं प्रसीद भगवन् कुरु मय्यनाथे** विष्णो कृपां परम-कारुणिकः खलु त्वम् । **संसार-सागर-निमग्न-मनन्त दीनम्** उद्धर्तु-मर्हसि हरे पुरुषोत्तमोऽसि ।।३४।। **नमामि नारायण-पाद-पङ्कजं** करोमि नारायण-पूजनं सदा । **वदामि नारायण-नाम निर्मलं** स्मरामि नारायण-तत्त्व-मव्ययम् ।।३५।। **श्रीनाथ नारायण वासुदेव** श्रीकृष्ण भक्तप्रिय चक्रपाणे । **श्रीपद्मनाभाच्युत कैटभारे** श्रीराम पद्माक्ष हरे मुरारे ।।३६।। **अनन्त वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण** गोविन्द दामोदर माधवेति । **वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिद्** अहो जनानां व्यसनाभि-मुख्यम् ।।३७।। **ध्यायन्ति ये विष्णु-मनन्त-मव्ययं** हृत्-पद्म-मध्ये सततं व्यवस्थितम् । **समाहितानां सततामय-प्रदं** ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ।।३८।। **क्षीर-सागर-तरङ्ग-शीकरा-**सार-तार-कित-चारु-मूर्तये । **भोगि-भोग-शयनीय-शायिने** माधवाय मधु-विद्विषे नमः ।।३९।। **यस्य प्रियौ श्रुति-धरौ कवि-लोक-वीरौ मित्रे द्विजन्म-वरपद्म-शराव-भूताम् । तेनाम्बुजाक्ष-चरणाम्बुज-षट्पदेन राज्ञा कृता कृति-रियं कुल-शेखरेण ।।४०।। ओं तत्सत्।।**

।। श्रीहयग्रीवाष्टोत्तर-शतनाम-स्तोत्रम् ।।

विनियोगः — **ॐ अस्य श्री-हयग्रीव-स्तोत्र-मन्त्रस्य सङ्कर्षण ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीहयग्रीवो देवता, ऋं बीजं, नमः शक्तिः, विद्यार्थे जपे विनियोगः।**

अथ ध्यानम् — **वन्दे पूरित-चन्द्र-मण्डल-गतं श्वेतार-विन्दासनं** मन्दाकिन्य-मृताब्धि-कुन्द-कुमुद-क्षीरेन्दु-हासं हरिम् । **मुद्रा-पुस्तक-**

शङ्ख-चक्र-विलसद् श्रीमद्-भुजा-मण्डितं नित्यं निर्मल-भारती-परिमलं विश्वेश-मश्चाननम् ।। **ऋग्-यजुः-साम-रूपाय** वेदाहरण-कर्मणे । **प्रणवोद्गीथ-वचसे** महाश्व-शिरसे नमः।।

।। श्रीहयग्रीवाय नमः ।।

ज्ञानानन्द-मयं देवं निर्मल-स्फटिका-कृतिम् । **आधारं सर्व-विद्यानां** हयग्रीव-मुपास्महे ।।१।। **हयग्रीवो महाविष्णुः** केशवो मधुसूदनः। **गोविन्दः पुण्डरीकाक्षो** विष्णुर्-विश्वम्भरो हरिः ।।२।। **आदीशः सर्व-वागीशः** सर्वाधारः सनातनः । **निराधारो निराकारो** निरीशो निरुपद्रवः ।।३।। **निरञ्जनो निष्कलङ्को** नित्य-तृप्तो निरामयः । **चिदानन्द-मयः साक्षी** शरण्यः सर्वदायकः ।।४।। **श्रीमान् लोक-त्रयाधीशः** शिवः सारस्वत-प्रदः । **वेदोद्धर्त्ता वेदनिधिः** वेदवेद्यः पुरातनः ।।५।। **पूर्णः पूरयिता पुण्यः** पुण्य-कीर्तिः परात्परः । **परमात्मा परञ्ज्योतिः** परेशः पारगः परः ।।६।। **सकलोप-निषद्-वेद्यो** निष्कलः सर्व-शास्त्र-कृत् । **अक्षमाला-ज्ञानमुद्रा-**युक्तहस्तो वरप्रदः ।।७।। **पुराण-पुरुषः श्रेष्ठः** शरण्यः परमेश्वरः । **शान्तो दान्तो जित-क्रोधो** जिता-मित्रो जगन्मयः ।।८।। **जरा-मृत्यु-हरो जीवो** जयदो जाड्य-नाशनः । **जप-प्रियो जप-स्तुत्यो** जपकृत् प्रियकृद् विभुः ।।९।। **विमलो विश्वरूपश्च** विश्व-गोप्ता विराट् स्वराट् । **विधि-विष्णु-शिव-स्तुत्यः** शान्तिदः क्षान्ति-कारकः ।।१०।। **श्रेयःप्रदः श्रुतिमयः** श्रेयसां पति-रीश्वरः। **अच्युतोऽनन्त-रूपश्च** प्राणदः पृथिवीपतिः ।।११।। **अव्यक्तो व्यक्त-रूपश्च** सर्व-साक्षी तमोहरः। **अज्ञान-नाशको ज्ञानी** पूर्ण-चन्द्र-सम-प्रभः ।।१२।। **ज्ञानदो**

वाक्पतिर्-योगी योगीशः सर्वकामदः । **योगारूढो महापुण्यः** पुण्यकीर्ति-रमित्रहा ।।१३।। **विश्व-साक्षी चिदाकारः** परमानन्द-कारकः । **महायोगी महामौनी** मुनीशः श्रेयसां निधिः ।।१४।। **हंसः परमहंसश्च** विश्व-गोप्ता विराट् स्वराट् । **शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशो** जटा-मण्डल-संयुतः ।।१५।। **आदि-मध्यान्त-रहितः** सर्व-वागीश्वरेश्वरः । **प्रणवोद्गीथ-रूपश्च** वेदाहरण-कर्म-कृत् ।।१६।। **नाम्नाम् अष्टोत्तर-शतं** हयग्रीवस्य यः पठेत् । **स सर्ववेद-वेदाङ्ग-**शास्त्राणां पारगः कविः ।।१७।। **इद-मष्टोत्तर-शतं नित्यं** मूढोऽपि यः पठेत् । **वाचस्पति-समो बुद्ध्या** सर्व-विद्या-विशारदः ।।१८।। **महदैश्वर्य-माप्नोति** कलत्राणि च पुत्रकान् । **नश्यन्ति सकलान् रोगान्** अन्ते हरिपुरं व्रजेत् ।।१९।। **ओं तत्सत् ।।**

।। श्रीवरवरमुनिकृतं श्रीराम-मङ्गलाशासनम् ।।

मङ्गलं कौसलेन्द्राय महनीय गुणात्मने । **चक्रवर्ति-तनूजाय** सार्व-भौमाय मङ्गलम् ।।१।। **वेद-वेदान्त-वेद्याय** मेघ-श्यामल-मूर्तये । **पुंसां मोहन-रूपाय** पुण्य-श्लोकाय मङ्गलम् ।।२।। **विश्वामित्रान्त-रङ्गाय** मिथिला-नगरीपतेः । **भाग्यानां परिपाकाय** भव्य-रूपाय मङ्गलम् ।।३।। **पितृ-भक्ताय सततं** भातृभिः सह सीतया । **नन्दिताखिल-लोकाय** रामभद्राय मङ्गलम् ।।४।। **त्यक्त-साकेत-वासाय** चित्रकूट-विहारिणे । **सेव्याय सर्व-यमिनां** धीरोदात्ताय मङ्गलम् ।।५।। **सौमित्रिणा च जानक्या** चाप-बाणासि-धारिणे । **संसेव्याय सदा भक्त्या** स्वामिने मम मङ्गलम् ।।६।। **दण्डकारण्य-वासाय** खर-दूषण-शत्रवे । **गृध्रराजाय भक्ताय** मुक्ति-दायास्तु मङ्गलम् ।।७।।

सादरं शबरी-दत्त-फल-मूलाभि-लाषिणे । **सौलभ्य-परिपूर्णाय** सत्यो-द्रिक्ताय मङ्गलम् ।।८।। **हनुमत्-समवेताय** हरीशाभीष्ट-दायिने । **वालि-प्रमथ-नायास्तु** महाधीराय मङ्गलम् ।।९।। **श्रीमते रघुवीराय** सेतू-ल्लङ्घित-सिन्धवे । **जित-राक्षस-राजाय** रणधीराय मङ्गलम् ।।१०।। **विभीषण-कृते प्रीत्या** लङ्काभीष्ट-प्रदायिने । **सर्व-लोक-शरण्याय** श्रीराघवाय मङ्गलम् ।।११।। **आगत्य नगरीं दिव्याम्** अभिषिक्ताय सीतया । **राजाधि-राज-राजाय** रामभद्राय मङ्गलम् ।।१२।। **ब्रह्मादि-देव-सेव्याय** ब्रह्मण्याय महात्मने । **जानकी-प्राण-नाथाय** रघुनाथाय मङ्गलम् ।।१३।। **श्रीसौम्यजा-मातृ-मुनेः** कृपया-स्मानु-पेयुषे । **महते मम नाथाय** रघुनाथाय मङ्गलम् ।।१४।। **मङ्गला-शासन-परैः** मदाचार्य-पुरोगमैः । **सर्वैश्च पूर्वै-राचार्यैः** सत्-कृतायास्तु मङ्गलम् ।।१५।। **रम्यजा-मातृ-मुनिना** मङ्गला-शासनं कृतम् । **त्रैलोक्या-धिपतिः श्रीमान्** करोतु मङ्गलं सदा ।।१६।।

।। श्रीवेदान्त-देशिक-कृतं सुदर्शनाष्टकम् ।।

श्रीमान् वेङ्कट-नाथार्यः कवि-तार्किक-केसरी । **वेदान्ताचार्य-वर्यो मे** सन्निधत्तां सदा हृदि ।। **प्रतिभट-श्रेणि-भीषण वरगुण-स्तोम-भूषण** जनि-भय-स्थान-तारण जगदव-स्थान-कारण । **निखिल-दुष्कर्म-कर्शन निगम-सद्धर्म-दर्शन** जय जय श्रीसुदर्शन जय जय श्रीसुदर्शन ।।१।। **शुभ-जगद् रूप-मण्डन सुर-गण-त्रास-खण्डन** शत-मख-ब्रह्म-वन्दित शतपथ-ब्रह्म-नन्दित । **प्रथित-विद्वत्स-पक्षित भज-दहिर्-बुध्न्य-लक्षित** जय जय श्रीसुदर्शन जय जय श्रीसुदर्शन ।।२।। **स्फुट-तटिज्जाल-पिञ्जर पृथुतर-ज्वाल-पञ्जर** परिगत-

प्रत्न-विग्रह पतुतर-प्रज्ञदुर्ग्रह । **प्रहरण-ग्राम-मण्डित परिजन-त्राण-पण्डित** जय जय श्रीसुदर्शन जय जय श्रीसुदर्शन ।।३।। **निजपद-प्रीत-सद्गण निरुपधि-स्फीत-षड्गुण** निगम-निर्व्यूढ-वैभव निजपर-व्यूह-वैभव । **हरिहय-द्वेषि-दारण हरपुर-प्लोष-कारण** जय जय श्रीसुदर्शन जय जय श्रीसुदर्शन ।।४।। **दनुज-विस्तार-कर्तन जनित-मित्रा-विकर्तन** दनुज-विद्या-निकर्तन भज-दविद्या-निवर्तन । **अमर-दृष्टस्व-विक्रम समर-जुष्टभ्र-मिक्रम** जय जय श्रीसुदर्शन जय जय श्रीसुदर्शन ।।५।। **प्रथिमु-खालीढ-बन्धुर पृथु-महाहेति-दन्तुर** विकट-माया-बहिष्कृत विविध-माला-परिष्कृत । **स्थिर-महा-यन्त्र-तन्त्रित दृढ-दया-तन्त्र-यन्त्रित** जय जय श्रीसुदर्शन जय जय श्रीसुदर्शन ।।६।। **महित-सम्पत्-सदक्षर विहित-सम्पत्-षडक्षर** षडर-चक्र-प्रतिष्ठित सकल-तत्त्व-प्रतिष्ठित । **विविध-सङ्कल्प-कल्पक विबुध-सङ्कल्प-कल्पक** जय जय श्रीसुदर्शन जय जय श्रीसुदर्शन ।।७।। **भुवन-नेत्र त्रयी-मय सवन-तेजस्-त्रयी-मय** निरवधि-स्वादु-चिन्मय निखिल-शक्ते जगन्मय। **अमित-विश्व-क्रिया-मय शमित-विश्वग्-भयामय** जय जय श्रीसुदर्शन जय जय श्रीसुदर्शन ।।८।। **द्वि-चतुष्क-मिदं प्रभूत-सारं** पठतां वेङ्कट-नायक प्रणीतम् । **विषमेऽपि मनोरथः प्रधावद्** न विहन्येत रथाङ्ग-धुर्य-गुप्तः ।। **ओं तत्सत् ।।**

।। श्रीपराशर-भट्ट-कृतं श्रीगुण-रत्नकोशः ।।

श्रीपराशरभट्टार्यः श्रीरङ्गेशपुरोहितः। श्रीवत्साङ्कसुतः श्रीमान् श्रेयसे मेऽस्तु भूयसे ।। श्रियै समस्तचिदचिद्विधानव्यसनं हरेः। अङ्गीकारिभिरालोकैः सार्थयन्त्यै कृतोऽञ्जलिः ।।१।। उल्लासपल्लवितपालितसप्तलोकीनिर्वाहकोरकित-

नेमकटाक्षलीलाम्। श्रीरङ्गहर्म्यतलमङ्गलदीपरेखां श्रीरङ्गराजमहिषीं श्रियमाश्रयामः ।।२।। अनुकलतनुकाण्डालिङ्गनारम्भशुम्भत् प्रतिदिशभुजशाखश्रीसखानोकहर्द्धिः। स्तननयनगुलुच्छस्फारपुष्पद्विरेफाः रचयतु मयि लक्ष्मीकल्पवल्ली कटाक्षान् ।।३।। यद्भ्रूभङ्गाः प्रमाणं स्थिरचररचनातारतम्ये मुरारेर्वेदान्तास्तत्त्वचिन्तां मुरभिदुरसि यत्पादचिह्नैस्तरन्ति। भोगोपोद्घातकेलीचुलकितभगवद्वैश्वरूप्यानुभावा सा नः श्रीरास्तृणीताममृतलहरिधीलङ्घनीयैरपाङ्गैः ।।४।। यद्यावत्तववैभवं तदुचितस्तोत्राय दूरे स्पृहा स्तोतुं के वयमित्यदश्च जगृहुः प्राञ्चो विरिञ्चादयः। अप्येवं तव देवि वाङ्मनसयोर्भाषानभिज्ञं पदं का वाचः प्रयतामहे कवयितुं स्वस्ति प्रशस्त्यै गिराम् ।।५।। स्तोतारं तमुशन्ति देवि कवयो यो विस्तृणीते गुणान् स्तोतव्यस्य ततश्च ते स्तुतिधुरामय्येव विश्राम्यति। यस्मादस्मदमर्षणीयफणितिस्वीकारतस्ते गुणाः क्षान्त्यौदार्यदयादयो भगवति स्वां प्रस्नुवीरन् प्रथाम् ।।६।। सूक्तिं समग्रयतु नः स्वयमेव लक्ष्मीः श्रीरङ्गराजमहिषी मधुरैः कटाक्षैः। वैदग्ध्यवर्णगुणगुम्भनगौरवैर्यां कण्डूलकर्णकुहराः कवयो धयन्ति ।।७।। अनाघ्रातावद्यं बहुगुणपरीणाहि मनसो दुहानं सौहार्दं परिचितमिवाथापि गहनम्। पदानां सौभ्रात्रादनिमिषनिषेव्यं श्रवणयोस्त्वमेव श्रीर्मह्यं बहुमुखय वाणीविलसितम् ।।८।। श्रियः श्रीः श्रीरङ्गेशय तव च हृद्यां भगवतीं श्रियं त्वत्तोऽप्युच्चैर्वयमिह फणामः शृणुतराम्। दृशौ ते भूयास्तां सुखतरलतारे श्रवणतः पुनर्हर्षोत्कर्षात् स्फुटतु भुजयोः कञ्चुकशतम् ।।९।। देवि श्रुतिं भगवतीं प्रथमे पुमांसस्त्वत्सद्गुणौघमणिकोशगृहं गृणन्ति। तद्द्वारपाटनपटूनि च सेतिहाससन्तर्कणस्मृतिपुराणपुरस्सराणि ।।१०।। आहुर्वेदानमानं कतिचन कतिचाराजकं विश्वमेतद्राजन्वत्केचिदीशं गुणिनमपि गुणैस्तं दरिद्राणमन्ये। भिक्षावन्ये

सुराजम्भवमिति च जडास्ते तलातल्यकार्षुर्ये ते श्रीरङ्गहर्म्याङ्गण-कनकलते न क्षणं लक्ष्यमासन् ।।११।। मनसि विलसताऽक्ष्णा भक्तिसिद्धाञ्जनेन श्रुतिशिरसिनिगूढं लक्ष्मि ते वीक्षमाणाः। निधिमिव महिमानं भुञ्जते येऽपि धन्याः ननु भगवति दैवीं सम्पदं तेऽभिजाताः ।।१२।। अस्येशाना जगत इतितेऽधीमहे यां समृद्धिं श्रीः श्रीसूक्तं बहुमुखयते तां च शाखानुशाखम्। ईष्टे कश्चिज्जगत इति यः पौरुषे सूक्त उक्तस्तं च त्वत्कं पतिमधिजगावुत्तर-श्चानुवाकः ।।१३।। उद्बाहुस्त्वामुपनिषदसावाह नैका नियन्त्रीं श्रीमद्रामायणमपि परं प्राणिति त्वच्चरित्रे। स्मर्त्तारोऽस्मज्जननि यतमे सेतिहासैः पुराणैर्नित्युर्वेदानपि च ततमे त्वन्महिम्नि प्रमाणम् ।।१४।। आकुग्रामनियामकादपि विभोरासर्व-निर्वाहकादैश्वर्यं यदिहोत्तरोत्तरगुणं श्रीरङ्गभर्तुः प्रिये। तुङ्गं मङ्गलमुज्ज्वलं गरिमवत् पुण्यं पुनः पावनं धन्यं यत्तददश्च वीक्षणभुवस्ते पञ्चषाः विप्रुषः ।।१५।। एको मुक्तातपत्रप्रचलमणिघणत्कारिमौलिर्मनुष्यो दृप्यद्दन्तावळस्थो न गणयति नतान् यत्क्षणं क्षोणिपालान्। यत्तस्मै तिष्ठतेऽन्यः कृपणमशरणो दर्शयन् दन्तपङ्क्तीं तत्ते श्रीरङ्गराजप्रणयिनि नयनोदञ्चितान्यञ्चिताभ्याम् ।।१६।। रतिर्मतिसरस्वती धृतिसमृद्धिसिद्धिश्रियः सुधासखि यतोमुखं चिचलिषेत्तव भ्रूलता। ततो मुखमथेन्दिरे बहुमुखीमहम्पूर्विकां विगाह्य च वशंवदाः परिवहन्ति कूलङ्कषाः ।।१७।। सह स्थिरपरित्रसव्रजविरिञ्चनाकिञ्चनैरनोकहबृहस्पति-प्रबलविक्लवप्रक्रियम्। इदं सदसदात्मना निखिलमेव निम्नोन्नतं कटाक्ष-तदुपेक्षयोस्तव हि लक्ष्मि तत्ताण्डवम् ।।१८।। काले शंसति योग्यतां चिदचितो-रन्योन्यमालिङ्गतोः भूताहङ्कृतिबुद्धिपञ्चकरणीस्वान्तप्रवृत्तीन्द्रियैः। अण्डानावरणैः सहस्रमकरोत्तान् भूर्भुवः सर्वतः श्रीरङ्गेश्वरदेवि ते विहृतये सङ्कल्पमानः प्रियः ।।१९।। शब्दादीन् विषयान् प्रदर्श्य विभवं विस्मार्य दास्यात्मकं वैष्णव्या

गुणमाययाऽऽत्मनिवहान् विप्लाव्य पूर्वः पुमान्। पुंसा पण्यवधूविडम्बिवपुषा धूर्तानिवायासयन् श्रीरङ्गेश्वरि कल्पते तव परीहासात्मने केलये ।।२०।। यद्दूरे मनसो यदेव तमसः पारे यदत्यद्भुतं यत्कालादपचेलिमं सुरपुरी यद्गच्छतो दुर्गतिः। सायुज्यस्य यदेव सूतिरथवा यद्दुर्ग्रहं मद्गिरां तद्विष्णोः परमं पदं तव कृते मातस्समाम्नासिषुः ।।२१।। हेलायामखिलं चराचरमिदं भोगे विभूतिः परा पुण्यास्ते परिचारकर्मणि सदा पश्यन्ति ये सूरयः। श्रीरङ्गेश्वरदेवि केवलकृपानिर्वाह्यवर्गे वयं शेषित्वे परमः पुमान् परिकरा ह्येते तव स्फारणे ।।२२।। आज्ञानुग्रहभीमकोमलपुरीपाला फलं भेजुषां याऽयोध्येत्यपराजितेति विदिता नाकं परेण स्थिता। भावैरद्भुतभोगभूमगहनैः सान्द्रा सुधास्यन्दिभिः श्रीरङ्गेश्वरगेहलक्ष्मि युवयोस्तां राजधानीं विदुः ।।२३।। तस्यां च त्वत्कृपावन्निरवधिजनताविश्रमार्हावकाशं सङ्कीर्णं दास्यतृष्णाकलितपरिकरैः पुम्भिरानन्दनिघ्नैः। स्नेहादास्थानरक्षाव्यसनिभिरभयं शार्ङ्गचक्रासिमुख्यैरानन्दै-कार्णवं श्रीर्भगवति युवयोराहुरास्थानरत्नम् ।।२४।। तत्र स्रक्स्पर्शगन्धं स्फुरदुपरिफणारत्नरोचिर्वितानं विस्तीर्यानन्तभोगं तदुपरि नयता विश्वमेकातपत्रम्। तैस्तैः कान्तेन शान्तोदितगुणविभवैरर्हता त्वामसङ्ख्यैरन्योन्याद्वैतनिष्ठाघन-रसगहनान् देवि बध्नासि भोगान् ।।२५।। भोग्या वामपि नान्तरीयकतया पुष्पाङ्गरागैः समं निर्वृत्तप्रणयातिवाहनविधौ नीताः परीवाहताम्। देवि त्वामनु नीलया सह महीदेव्यः सहस्रं तथा याभिस्वं स्तनबाहुदृष्टिभिरिव स्वाभिः प्रियं श्लाघसे ।।२६।। ते साध्याः सन्ति देवा जननि गुणवपुर्वेषवृत्तस्वरूपैः भोगैर्वा निर्विशेषाः सवयस इव ये नित्यनिर्दोषगन्धाः हे श्रीः श्रीरङ्गभर्तुस्तव च पदपरीचारवृत्त्यै सदाऽपि प्रेमप्रद्राणभावाविलहृदयहठात्कारकैङ्कर्यभोगाः ।।२७।। स्वरूपं स्वातन्त्र्यं भगवत इदं चन्द्रवदने त्वदाश्लेषोत्कर्षाद्भवति

खलु निष्कर्षसमये। त्वमासीर्मातः श्रीः कमितुरिदमित्थं त्वविभवस्तदन्तर्भावात्त्वां न पृथगभिदधत्ते श्रुतिरपि ।।२८।। तव स्पर्शादीशं स्पृशति कमले मङ्गलपदं तवेदं नोपाधेरुपनिपतितं श्रीरसि यतः। प्रसूनं पुष्यन्तीमपि परिमलर्धिं जिगदिषुर्न चैवं त्वा देवं स्वदत इति कश्चित्कवयते ।।२९।। अपाङ्गा भूयांसो यदुपरि परं ब्रह्म तदभूदमी यत्र द्वित्राः स च शतमखादिस्तदधरात्। अतः श्रीराम्नायस्तदुभयमुशंस्त्वां प्रणिजगौ प्रशस्तिः सा राज्ञो यदपि च पुरीकोश-कथनम् ।।३०।। स्वतः श्रीस्त्वं विष्णोः स्वमसि तत एवैश भगवांस्त्वदाय-त्तर्धित्वेऽप्यभवदपराधीनविभवः। स्वया दीप्त्या रत्नं भवदपि महार्घं न विगुणं न कुण्ठस्वातन्त्र्यं भवति न चान्याहितगुणम् ।।३१।। प्रशकनबलज्योतिर्ज्ञानैश्वरी-विजयप्रथाप्रणतवरणप्रेमक्षेमङ्करत्वपुरस्सरा अपि परिमलः कान्तिर्लावण्य-मर्चिरितीन्दिरे तव भगवतश्चैते साधारणाः गुणराशयः ।।३२।। अन्येऽपि यौवनमुखाः युवयोः समानाः श्रीरङ्गमङ्गलविजृम्भणवैजयन्ति तस्मिंस्तव त्वयि च तस्य परस्परेण संस्तीर्य दर्पण इव प्रचुरं स्वदन्ते ।।३३।। युवत्वादौ तुल्येऽप्यरवशताशत्रुशमनस्थिरत्वादीन् कृत्वा भगवति गुणान् पुंस्त्वसुलभान्। त्वयि स्त्रीत्वैकान्तान् प्रदिमपतिपारार्थ्यकरुणाक्षमादीन् वा भोक्तुं भवति युवयोरात्मनि भिदा ।।३४।। घनकनकद्युती युवदशामपि मुग्धदशां युवतरुणत्वयोरुचितमाभरणादि परम्। ध्रुवमसमानदेशविनिवेशि विभज्य हरौ त्वयि च कुशेशयोदरविहारिणि निर्विशसि ।।३५।। अङ्गं ते मृदुशीतमुग्ध-मधुरोदारैर्गुणैर्गुम्भतः क्षीराब्धेः किमृजीषतामुपगताः मन्ये महार्घास्ततः। इन्दुः कल्पलता सुधामधुमुखा इत्याविलां वर्णनां श्रीरङ्गेश्वरि शान्तकृत्रिमकथं दिव्यं वपुर्नार्हति ।।३६।। प्रणमदनुविधित्सावासनानम्रमग्रे प्रणयिपरिचि-चीषाकुञ्चितं पार्श्वकेन। कनकनिकषचञ्चच्चम्पकस्रक्समानप्रवरमिदमुदारं वर्ष्म

वाचामभूमिः ।।३७।। एकं न्यञ्च्य नतिक्षमं मम परं चाकुञ्च्य पादाम्बुजं मध्ये विष्टरपुण्डरीकमभयं विन्यस्य हस्ताम्बुजम्। त्वां पश्येम निषेदुषीं प्रतिकलं कारुण्यकूलङ्कषस्फारापाङ्गतरङ्गमम्ब मधुरं मुग्धं मुखं बिभ्रतीम् ।।३८।। सुरभितनिगमान्तं वन्दिषीयेन्दिरायास्तव कमलपलाशप्रक्रियं पादयुग्मम्। वहति यदुपमर्देवैर्जयन्ती हिमाम्भः प्लुतिरिव नवत्वं कान्तबाहान्तराले ।।३९।। त्वत्स्वीकारकलावलेपकलुषा राज्ञां दृशो दुर्वचाः नित्यं त्वन्मधुपानमत्तमधुपश्री-निर्भराभ्यां पतिम्। दृग्भ्यामेव हि पुण्डरीकनयनं वेदो विदामास ते साक्षाल्लक्ष्मि तवावलोकविभवः का क्वा कया वर्ण्यते ।।४०।। आनन्दात्मभिरीशमज्जन-मदक्षीबालसैरागलप्रेमार्द्रैरपि कूलमुद्वहकृपासम्प्लावितास्मादृशैः। पद्मे ते प्रतिबिन्दुबद्धकलिकब्रह्मादिविष्कम्भवैरेश्चर्योद्गमगद्गदैरशरणं मां पालयाऽऽलोकितैः ।।४१।। पादारुन्तुदमेवपङ्कजरजश्चेटीभृशालोकितै-रङ्गम्लानिरथाम्ब साहसविधौ लीलारविन्दग्रहो डोला ते वनमालया हरिभुजे हा कष्टशब्दास्पदं केन श्रीरतिकोमला तनुरियं वाचां विमर्दक्षमा ।।४२।। आ मर्यादमकण्टकं स्तनयुगं नाद्यापि नालोकितभ्रूभेदस्मितविभ्रमा जहति वा नैसर्गिकत्वाऽयशः। सूते शैशवयौवनव्यतिकरो गात्रेषु ते सौरभं भोगस्रोतसि कान्तदेशिककरग्राहेण गाहक्षमः ।।४३।। आमोदाद्भुतशालि यौवनदशाव्या-कोचमम्लानिमत् सौन्दर्यामृतसेकशीतलमिदं लावण्यसूत्रार्पितम्। श्रीरङ्गेश्वरि कोमलाङ्गसुमनः सन्दर्भणं देवि ते कान्तोरः प्रतियत्नमर्हति कविं धिङ् मामकाण्डाकुलम् ।।४४।। मर्मस्पृशो रससिरा व्यतिविध्य वृत्तैः कान्तोपभोग-ललितैर्लुलिताङ्गयष्टिः। पुष्पावलीव रसिकभ्रमरोपभुक्ता त्वं देवि नित्यमभिनन्दयसे मुकुन्दम् ।।४५।। कनकरशनामुक्ताताटङ्कहारललाटिकामणिसरतुलाकोटि-प्रायैर्जनार्दनजीविके प्रकृतिमधुरं गात्रं जागर्ति मुग्धविभूषणैर्वलयशकलैर्दुग्धं

पुष्पैश्च कल्पलता यथा ।।४६।। सामान्यभोग्यमपि कौस्तुभवैजयन्तीपञ्चायुधादि रमणः स्वयमेव बिभ्रत्। तद्भारखेदमिव ते परिहर्तुकामः श्रीरङ्गधाममणिमञ्जरि गाहते त्वाम् ।।४७।। यदि मनुजतिरश्चां लीलया तुल्यवृत्तेरनुजनुरनुरूपा देवि नावातरिष्यः। असरसमभविष्यन्नर्म नाथस्य मातर्दरदलदरविन्दोदन्त-कान्तायताक्षि ।।४८।। स्खलितकटकमाल्यैर्दोर्भिरब्धिं मुरारेर्भगवति दधिमाथं मथ्नतः श्रान्तिशान्त्यै। भ्रमदमृतरङ्गावर्ततः प्रादुरासीः स्मितनयनसुधाभिस्सिञ्चती चन्द्रिकेव ।।४९।। मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी ।।५०।। मातर्लक्ष्मि यथैव मैथिलजनस्तेनाध्वना ते वयं त्वद्दास्यैकरसाभिमानसुभगैर्भावै-रिहामुत्र च। जामाता दयितस्तवेति भवतीसम्बन्धदृष्ट्या हरिं पश्येम प्रतियाम याम च परीचारान् प्रहृष्येम च ।।५१।। पितेव त्वत्प्रेयान् जननि परिपूर्णागसि जने हितस्रोतो वृत्त्या भवति च कदाचित्कलुषधीः। किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीतित्वमुचितैरुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः ।।५२।। नेतुर्नित्यसहायिनी जननि नस्त्रातुं त्वमत्रागता लोके त्वन्महिमावबोधबधिरे प्राप्ता विमर्दं बहु। क्लिष्टं ग्रावसु मालतीमृदुपदं विश्लिष्य वासो वने जातो धिक्करुणां धिगस्तु युवयोः स्वातन्त्र्यमत्यङ्कुशम् ।।५३।। अधिशयितवानब्धिं नाथो ममन्थ बबन्ध तं हरधनुरसौ वल्लीभङ्गं बभञ्ज च मैथिलि। अपि दशमुखीं लूत्वा रक्षः कबन्धमनर्तयत् किमिव न पतिः कर्ता त्वच्चाटुचुञ्चुमनोरथः ।।५४।। दशशतपाणिपादवदनाक्षिमुखैरखिलैरपि निजवैश्वरूप्यविभवैरनुरूप-गुणैः। अवतरणैरतैश्च रसयन् कमिता कमले क्वचन हि विभ्रमभ्रमिमुखे विनिमज्जति ते ।।५५।। जननभवनप्रीत्या दुग्धार्णवं बहुमन्यसे जननि

दयितप्रेम्णा पुष्णासि तत्परमं पदम्। उदधिपरमव्योम्नोर्विस्मृत्य मादृशरक्षणक्षम-मिति धिया भूयः श्रीरङ्गधामनि मोदसे ।।५६।। औदार्यकारुणिकताश्रित-वत्सलत्वपूर्वेषु सर्वमतिशायितमत्र मातः। श्रीरङ्गधाम्नि यदुतान्यदुदाहरन्ति सीतावतारमुखमेतदमुष्य योग्या ।।५७।। ऐश्वर्यमक्षरगतिं परमं पदं वा कस्मै चिदञ्जलिभरं वहते वितीर्य अस्मै न किञ्चिदुचितं कृतमित्यथाम्ब त्वं लज्जसे कथय कोऽयमुदारभावः ।।५८।। ज्ञानक्रियाभजनसम्पदकिञ्चनोऽहं इच्छाधिकारशकनानुशयानभिज्ञः। आगांसि देवि युवयोरपि दुस्सहानि बध्नामि मूर्खचरितस्तव दुर्भरोऽस्मि ।।५९।। इत्युक्तिकैतवशतेन विडम्बयामि तानम्ब सत्यवचसः पुरुषान् पुराणान्। यद्वा न मे भुजबलं तव पादपद्मलाभे त्वमेव शरणं विधितः कृताऽसि ।।६०।। श्रीरङ्गे शरदः शतं सह सुहृद्वर्गेण निष्कण्टकं निर्दुःखं सुसुखञ्च दास्यरसिकां भुक्त्वा समृद्धिं पराम्। युष्मत्पादसरोरुहान्तररजः स्याम त्वमम्बा पिता सर्वं च त्वमसि त्वमेव भव नः स्वीकुर्वकस्मात्कृपाम् ।। स्वस्तिश्रीः।।

।। अथ श्रीविष्णु-सहस्र-नामावलिः ।।

शान्ता-कारं भुजग-शयनं पद्म-नाभं सुरेशं
विश्वा-धारं गगन-सदृशं मेघ-वर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मी-कान्तं कमल-नयनं योगिभि-र्ध्यान-गम्यं
वन्दे विष्णुं भवभय-हरं सर्व-लोकैक-नाथम् ।।

विश्वस्मै नमः। विष्णवे नमः। वषट्-काराय नमः। भूत-भव्य-भवत्-प्रभवे नमः। भूतकृते नमः। भूतभृते नमः। भावाय नमः। भूतात्मने नमः। भूत-भावनाय नमः। पूतात्मने नमः। परमात्मने नमः। मुक्तानां परम-गतये नमः। अव्ययाय नमः। पुरुषाय नमः। साक्षिणे नमः। क्षेत्रज्ञाय नमः।

अक्षराय नमः। योगाय नमः। योग-विदां नेत्रे नमः। प्रधान-पुरुषेश्वराय नमः। नारसिंह-वपुषे नमः। श्रीमते नमः। केशवाय नमः। पुरुषोत्तमाय नमः। सर्वस्मै नमः। शर्वाय नमः। शिवाय नमः। स्थाणवे नमः। भूतादये नमः। निधये अव्ययाय नमः। सम्भवाय नमः। भावनाय नमः। भर्त्रे नमः। प्रभवाय नमः। प्रभवे नमः। ईश्वराय नमः। स्वयम्भुवे नमः। शम्भवे नमः। आदित्याय नमः। पुष्कराक्षाय नमः। महास्वनाय नमः। अनादि-निधनाय नमः। धात्रे नमः। विधात्रे नमः। धातु-रुत्तमाय नमः। अप्रमेयाय नमः। हृषीकेशाय नमः। पद्मनाभाय नमः। अमर-प्रभवे नमः। विश्वकर्मणे नमः। मनवे नमः। त्वष्ट्रे नमः। स्थविष्ठाय नमः। स्थविराय ध्रुवाय नमः। अग्रह्याय नमः। शाश्वताय नमः। कृष्णाय नमः। लोहिताक्षाय नमः। प्रतर्दनाय नमः। प्रभूताय नमः। त्रिककुब्-धाम्ने नमः। पवित्राय नमः। मङ्गलाय परस्मै नमः। ईशानाय नमः। प्राणदाय नमः। प्राणाय नमः। ज्येष्ठाय नमः। श्रेष्ठाय नमः। प्रजापतये नमः। हिरण्य-गर्भाय नमः। भूगर्भाय नमः। माधवाय नमः। मधु-सूदनाय नमः। ईश्वराय नमः। विक्रमिणे नमः। धन्विने नमः। मेधाविने नमः। विक्रमाय नमः। क्रमाय नमः। अनुत्तमाय नमः। दुराधर्षाय नमः। कृतज्ञाय नमः। कृतये नमः। आत्मवते नमः। सुरेशाय नमः। शरणाय नमः। शर्मणे नमः। विश्वरेतसे नमः। प्रजाभवाय नमः। अह्ने नमः। सम्वत्सराय नमः। व्यालाय नमः। प्रत्ययाय नमः। सर्व-दर्शनाय नमः। अजाय नमः। सर्वेश्वराय नमः। सिद्धाय नमः। सिद्धये नमः। सर्वादये नमः। अच्युताय नमः (१००) वृषाकपये नमः। अमेयात्मने नमः। सर्वयोग-विनिस्सृताय नमः। वसवे नमः। वसुमनसे नमः। सत्याय नमः। समात्मने नमः। सम्मिताय नमः। समाय नमः। अमोघाय नमः। पुण्डरीकाक्षाय

नमः। वृषकर्मणे नमः। वृषाकृतये नमः। रुद्राय नमः। बहुशिरसे नमः। बभ्रवे नमः। विश्वयोनये नमः। शुचि-श्रवसे नमः। अमृताय नमः। शाश्वत-स्थाणवे नमः। वरा-रोहाय नमः। महातपसे नमः। सर्वगाय नमः। सर्वविद्-भानवे नमः। विष्वक्सेनाय नमः। जनार्दनाय नमः। वेदाय नमः। वेदविदे नमः। अव्यङ्गाय नमः। वेदाङ्गाय नमः। वेदविदे नमः। कवये नमः। लोकाध्यक्षाय नमः। सुराध्यक्षाय नमः। धर्माध्यक्षाय नमः। कृताकृताय नमः। चतुरात्मने नमः। चतुर्व्यूहाय नमः। चतुर्दंष्ट्राय नमः। चतुर्भुजाय नमः। भ्राजिष्णवे नमः। भोजनाय नमः। भोक्त्रे नमः। सहिष्णवे नमः। जगदादि-जाय नमः। अनघाय नमः। विजयाय नमः। जेत्रे नमः। विश्व-योनये नमः। पुनर्वसवे नमः। उपेन्द्राय नमः। नामाय नमः। प्रांशवे नमः। अमोघाय नमः। शुचये नमः। उर्जिताय नमः। अतीन्द्राय नमः। सङ्ग्रहाय नमः। सर्गाय नमः। धृतात्मने नमः। नियमाय नमः। यमाय नमः। वेद्याय नमः। वैद्याय नमः। सदा-योगिने नमः। वीरघ्ने नमः। माधवाय नमः। मधवे नमः। अतीन्द्रियाय नमः। महा-मायाय नमः। महोत्साहाय नमः। महा-बलाय नमः। महाबुधाय नमः। महावीराय नमः। महाशक्तये नमः। महाद्युतये नमः। अनिर्देश्य-वपुषे नमः। श्रीमते नमः। अमेयात्मने नमः। महाद्रि-धृशे नमः। महेश्वासाय नमः। महीभर्त्रे नमः। श्रीनिवासाय नमः। सतां गतये नमः। अनिरुद्धाय नमः। सुरानन्दाय नमः। गोविन्दाय नमः। गोविदां पतये नमः। मरीचये नमः। दमनाय नमः। हंसाय नमः। सुपर्णाय नमः। भुजगोत्तमाय नमः। हिरण्य-नाभाय नमः। सुतपसे नमः। पद्मनाभाय नमः। प्रजा-पतये नमः। अमृत्यवे नमः। सर्वदृशे नमः। सिंहाय नमः (२००) सन्धात्रे नमः। सन्धि-मते नमः। स्थिराय नमः। अजाय नमः।

दुर्मर्षणाय नमः। शास्त्रे नमः। विश्रुतात्मने नमः। सुरारिघ्ने नमः। गुरुवे नमः। गुरु-तमाय नमः। धाम्ने नमः। सत्याय नमः। सत्य-पराक्रमाय नमः। निमिषाय नमः। अनिमिषाय नमः। स्रग्वीणे नमः। वाचस्पतय उदारधिये नमः। अग्रण्ये नमः। ग्रामण्ये नमः। श्रीमते नमः। न्यायाय नमः। नेत्रे नमः। समीरणाय नमः। सहस्र-मूर्ध्ने नमः। विश्वात्मने नमः। सहस्राक्षाय नमः। सहस्रपदे नमः। आवर्तनाय नमः। निवृत्तात्मने नमः। संवृत्ताय नमः। सम्प्रमर्दनाय नमः। अहःसंवर्तकाय नमः। वह्नये नमः। अनिलाय नमः। धरणी-धराय नमः। सुप्रसादाय नमः। प्रसन्नात्मने नमः। विश्वधृषे नमः। विश्व-भुजे नमः। विभवे नमः। सत्कर्त्रे नमः। सत्कृताय नमः। साधवे नमः। जाह्नवे नमः। नारायणाय नमः। नराय नमः। असङ्ख्येयाय नमः। अप्रमेयात्मने नमः। विशिष्टाय नमः। शिष्ट-कृते नमः। शुचये नमः। सिद्धार्थाय नमः। सिद्ध-सङ्कल्पाय नमः। सिद्धि-दाय नमः। सिद्धि-साधाय नमः। वृषाहिणे नमः। वृषभाय नमः। विष्णवे नमः। वृष-पर्वणे नमः। वृषोदराय नमः। वर्धनाय नमः। वर्धमानाय नमः। विविक्ताय नमः। श्रुति-सागराय नमः। सुभुजाय नमः। दुर्धराय नमः। वाग्मिने नमः। महेन्द्राय नमः। वसुदाय नमः। वसवे नमः। नैक-रूपाय नमः। बृहद्रूपाय नमः। शिपि-विष्टाय नमः। प्रकाशाय नमः। ओजस्तेजो-द्युति-धराय नमः। प्रकाशात्मने नमः। प्रतापनाय नमः। ऋद्धाय नमः। स्पष्टाक्षराय नमः। मन्त्राय नमः। चन्द्रांशवे नमः। भास्कर-द्युतये नमः। अमृतांशूद्-भवाय नमः। भानवे नमः। शश-बिन्दवे नमः। सुरेश्वराय नमः। औषधाय नमः। जगत्-सेतवे नमः। सत्य-धर्म-पराक्रमाय नमः। भूत-भव्य-भवन्नाथाय नमः। पवनाय नमः। पावनाय नमः। अनलाय नमः। कामघ्ने नमः। काम-कृते नमः।

कान्ताय नमः। कामाय नमः। काम-प्रदाय नमः। प्रभवे नमः। युगादि-कृते नमः (३००) युगावर्ताय नमः। नैक-मायाय नमः। महा-शनाय नमः। अदृश्याय नमः। व्यक्त-रूपाय नमः। सहस्र-जिते नमः। अनन्त-जिते नमः। इष्टाय नमः। विशिष्टाय नमः। शिष्टेष्टाय नमः। शिखण्डिने नमः। नहुषाय नमः। वृषाय नमः। क्रोधाग्ने नमः। क्रोध-कृत्-कर्त्रे नमः। विश्व-बाहवे नमः। महीधराय नमः। अच्युताय नमः। प्रथिताय नमः। प्राणाय नमः। प्राणदाय नमः। वासवानुजाय नमः। अपान्निधये नमः। अधिष्ठानाय नमः। अप्रमत्ताय नमः। प्रतिष्ठिताय नमः। स्कन्दाय नमः। स्कन्द-धराय नमः। धुर्याय नमः। वरदाय नमः। वायु-वाहनाय नमः। वासुदेवाय नमः। बृहद्-भानवे नमः। आदि-देवाय नमः। पुरन्दराय नमः। अशोकाय नमः। तारणाय नमः। ताराय नमः। शूराय नमः। शौरये नमः। जनेश्वराय नमः। अनुकूलाय नमः। शता-वर्ताय नमः। पद्मिने नमः। पद्मनिभेक्षणाय नमः। पद्म-नाभाय नमः। अरविन्दाय नमः। पद्म-गर्भाय नमः। शरीर-भृते नमः। महर्धये नमः। ऋद्धाय नमः। वृद्धात्मने नमः। महाक्षाय नमः। गरुड-ध्वजाय नमः। अतुलाय नमः। शरभाय नमः। भीमाय नमः। समयज्ञाय नमः। हविर्हरये नमः। सर्व-लक्षण-लक्षणाय नमः। लक्ष्मी-वते नमः। समिति-ञ्जयाय नमः। विक्षराय नमः। रोहिताय नमः। मार्गाय नमः। हेतवे नमः। दामोदराय नमः। सहाय नमः। महीधराय नमः। महाभागाय नमः। वेगवते नमः। अमिता-शनाय नमः। उद्भवाय नमः। क्षोभनाय नमः। देवाय नमः। श्रीगर्भाय नमः। परमेश्वराय नमः। करणाय नमः। कारणाय नमः। कर्त्रे नमः। विकर्त्रे नमः। गहनाय नमः। गुहाय नमः। व्यवसायाय नमः। व्यवस्थानाय नमः। संस्थानाय नमः। स्थानदाय नमः। ध्रुवाय नमः।

परार्धये नमः। परम-स्पष्टाय नमः। तुष्टाय नमः। पुष्टाय नमः। शुभेक्षणाय नमः। रामाय नमः। विरामाय नमः। विरजाय नमः। मार्गाय नमः। नेयाय नमः। नयाय नमः। अनयाय नमः (४००) वीराय नमः। शक्ति-मतां श्रेष्ठाय नमः। धर्माय नमः। धर्म-विदुत्तमाय नमः। वैकुण्ठाय नमः। पुरुषाय नमः। प्राणाय नमः। प्राणदाय नमः। प्रणवाय नमः। पृथवे नमः। हिरण्य-गर्भाय नमः। शत्रुघ्नाय नमः। व्याप्ताय नमः। वायवे नमः। अधोक्षजाय नमः। ऋतवे नमः। सुदर्शनाय नमः। कालाय नमः। परमेष्ठिने नमः। परिग्रहाय नमः। उग्राय नमः। सम्वत्सराय नमः। दक्षाय नमः। विश्रामाय नमः। विश्व-दक्षिणाय नमः। विस्ताराय नमः। स्थावर-स्थाणवे नमः। प्रमाणाय नमः। बीजाव्ययाय नमः। अर्थाय नमः। अनर्थाय नमः। महाकोशाय नमः। महाभोगाय नमः। महाधनाय नमः। अनिर्विण्णाय नमः। स्थविष्ठाय नमः। अभुवे नमः। धर्म-यूपाय नमः। महा-मखाय नमः। नक्षत्र-नेमये नमः। नक्षत्रिणे नमः। क्षमाय नमः। क्षामाय नमः। समीहनाय नमः। यज्ञाय नमः। ईज्याय नमः। महेज्याय नमः। क्रतवे नमः। सत्राय नमः। सतां गतये नमः। सर्व-दर्शिने नमः। विमुक्तात्मने नमः। सर्वज्ञाय नमः। ज्ञानोत्तमाय नमः। सुव्रताय नमः। सुमुखाय नमः। सूक्ष्माय नमः। सुघोषाय नमः। सुखदाय नमः। सुहृदे नमः। मनोहराय नमः। जित-क्रोधाय नमः। वीर-बाहवे नमः। विदारणाय नमः। स्वापनाय नमः। स्ववशाय नमः। व्यापिने नमः। नैकात्मने नमः। नैक-कर्म-कृते नमः। वत्सराय नमः। वत्सलाय नमः। वत्सिने नमः। रत्न-गर्भाय नमः। धनेश्वराय नमः। धर्मगुपे नमः। धर्मकृते नमः। धर्मिने नमः। सते नमः। असते नमः। क्षराय नमः। अक्षराय नमः। अविज्ञात्रे नमः। सहस्त्रांशवे नमः। विधात्रे नमः। कृत-

लक्षणाय नमः। गभस्ति-नेमये नमः। सत्त्व-स्थाय नमः। सिंहाय नमः। भूत-महेश्वराय नमः। आदि-देवाय नमः। महादेवाय नमः। देवेशाय नमः। देवभृद्-गुरवे नमः। उत्तराय नमः। गोपतये नमः। गोप्त्रे नमः। ज्ञान-गम्याय नमः। पुरातनाय नमः। शरीर-भूभृते नमः। भोक्त्रे नमः (५००) कपीन्द्राय नमः। भूरि-दक्षिणाय नमः। सोमपाय नमः। अमृतपाय नमः। सोमाय नमः। पुरुजिते नमः। पुरुसत्तमाय नमः। विनयाय नमः। जयाय नमः। सत्यसन्धाय नमः। दाशार्हाय नमः। सात्वतां पतये नमः। जीवाय नमः। विनयिता-साक्षिणे नमः। मुकुन्दाय नमः। अमित-विक्रमाय नमः। अम्भो-निधये नमः। अनन्तात्मने नमः। महोदधि-शयाय नमः। अनन्त-काय नमः। अजाय नमः। महार्हाय नमः। स्वाभाव्याय नमः। जिता-मित्राय नमः। प्रमोदाय नमः। आनन्दाय नमः। नन्दनाय नमः। नन्दाय नमः। सत्य-धर्मणे नमः। त्रिविक्रमाय नमः। महर्षि-कपिलाचार्याय नमः। कृतज्ञाय नमः। मेदिनीपतये नमः। त्रिपदाय नमः। त्रिदशाध्यक्षाय नमः। महाशृङ्गाय नमः। कृतान्त-कृते नमः। महा-वराहाय नमः। गोविन्दाय नमः। सुषेणाय नमः। कनकाङ्ग-दिने नमः। गुह्याय नमः। गभीराय नमः। गहनाय नमः। गुप्ताय नमः। चक्र-गदा-धराय नमः। वेधसे नमः। स्वाङ्गाय नमः। अजिताय नमः। कृष्णाय नमः। दृढाय नमः। सङ्कर्षणा-च्युताय नमः। वरुणाय नमः। वारुणाय नमः। वृक्षाय नमः। पुष्कराक्षाय नमः। महामनसे नमः। भगवते नमः। भगघ्ने नमः। आनन्दिने नमः। वन-मालिने नमः। हलायुधाय नमः। आदित्याय नमः। ज्योति-रादित्याय नमः। सहिष्णुवे नमः। गति-सत्तमाय नमः। सुधन्वने नमः। खण्ड-परशवे नमः। दारुणाय नमः। द्रविण-प्रदाय नमः। दिवस्पृशे नमः। सर्वदृग्-व्यासाय नमः। वाचस्पतये अयोनिजाय

नमः। त्रिसाम्ने नमः। साम-गाय नमः। साम्ने नमः। निर्वाणाय नमः। भेषजाय नमः। भिषजे नमः। सन्न्यास-कृते नमः। शमाय नमः। शान्ताय नमः। निष्ठायै नमः। शान्त्यै नमः। परायणाय नमः। शुभाङ्गाय नमः। शान्ति-दाय नमः। स्रष्ट्रे नमः। कुमुदाय नमः। कुव-लेशाय नमः। गो-हिताय नमः। गोपतये नमः। गोप्त्रे नमः। वृषभा-क्षाय नमः। वृषप्रियाय नमः। अनिवर्तिने नमः। निवृत्तात्मने नमः। सङ्क्षेप्त्रे नमः। क्षेमकृते नमः। शिवाय नमः (६००) श्रीवत्स-वक्षसे नमः। श्रीवासाय नमः। श्रीपतये नमः। श्रीमतां वराय नमः। श्रीदाय नमः। श्रीशाय नमः। श्री-निवासाय नमः। श्रीनिधये नमः। श्रीविभा-वनाय नमः। श्रीधराय नमः। श्रीकराय नमः। श्रेयसे नमः। श्रीमते नमः। लोक-त्रया-श्रयाय नमः। स्वक्षाय नमः। स्वाङ्गाय नमः। शतानन्दाय नमः। नन्द्ये नमः। ज्योति-र्गणेश्वराय नमः। विजितात्मने नमः। विधेयात्मने नमः। सत्कीर्तये नमः। छिन्न-संशयाय नमः। उदीर्णाय नमः। सर्वत-श्चक्षुषे नमः। अनीशाय नमः। शाश्वत-स्थिराय नमः। भूशयाय नमः। भूषणाय नमः। भूतये नमः। विशोकाय नमः। शोक-नाशनाय नमः। अर्चिष्मते नमः। अर्चिताय नमः। कुम्भाय नमः। विशुद्धात्मने नमः। विशोधनाय नमः। अनिरुद्धाय नमः। अप्रतिरथाय नमः। प्रद्युम्नाय नमः। अमित-विक्रमाय नमः। काल-नेमि-निघ्ने नमः। वीराय नमः। शौरये नमः। शूर-जनेश्वराय नमः। त्रिलोकात्मने नमः। त्रिलोकेशाय नमः। केशवाय नमः। केशिघ्ने नमः। हरये नमः। कामदेवाय नमः। काम-पालाय नमः। कामिने नमः। कान्ताय नमः। कृतागमाय नमः। अनिर्देश्य-वपुषे नमः। विष्णवे नमः। वीराय नमः। अनन्ताय नमः। धनञ्जयाय नमः। ब्रह्मण्याय नमः। ब्रह्मकृते नमः। ब्रह्मणे नमः। ब्राह्मणे नमः। ब्रह्म-

विवर्धनाय नमः। ब्रह्मविदे नमः। ब्राह्मणाय नमः। ब्रह्मिणे नमः। ब्रह्मज्ञाय नमः। ब्राह्मण-प्रियाय नमः। महा-क्रमाय नमः। महा-कर्मणे नमः। महा-तेजसे नमः। महोर-गाय नमः। महा-क्रतवे नमः। महा-यज्वने नमः। महा-यज्ञाय नमः। महा-हविषे नमः। स्तव्याय नमः। स्तव-प्रियाय नमः। स्तोत्राय नमः। स्तुतये नमः। स्तोत्रे नमः। रण-प्रियाय नमः। पूर्णाय नमः। पूरयित्रे नमः। पुण्याय नमः। पुण्य-कीर्तये नमः। अनामयाय नमः। मनो-जवाय नमः। तीर्थ-कराय नमः। वसु-रेतसे नमः। वसुप्रदाय नमः। वासुदेवाय नमः। वसवे नमः। वसु-मनसे नमः। हविषे नमः। हविषे नमः। सद्गतये नमः। सदृतये नमः (७००) सत्तायै नमः। सद्भूतये नमः। सत्परायणाय नमः। शूर-सेनाय नमः। यदु-श्रेष्ठाय नमः। सन्निवासाय नमः। सूयामुनाय नमः। भूतावासाय नमः। वासुदेवाय नमः। सर्वासु-निलयाय नमः। अनलाय नमः। दर्पघ्ने नमः। दर्पदाय नमः। दृप्ताय नमः। दुर्धराय नमः। अपराजिताय नमः। विश्व-मूर्तये नमः। महामूर्तये नमः। दीप्त-मूर्तये नमः। अमूर्तिमते नमः। अनेक-मूर्तये नमः। अव्यक्ताय नमः। शत-मूर्तये नमः। शताननाय नमः। एकस्मै नमः। नैकस्मै नमः। सवाय नमः। काय नमः। कस्मै नमः। यस्मै नमः। तस्मै नमः। पदानुत्तमाय नमः। लोक-बन्धवे नमः। लोक-नाथाय नमः। माधवाय नमः। भक्त-वत्सलाय नमः। सुवर्ण-वर्णाय नमः। हेमाङ्गाय नमः। वराङ्गाय नमः। चन्दनाङ्ग-दिने नमः। वीरघ्ने नमः। विषमाय नमः। शून्याय नमः। घृता-शीशाय नमः। अचलाय नमः। चलाय नमः। अमानिने नमः। मानदाय नमः। मान्याय नमः। लोक-स्वामिने नमः। त्रिलोक-धृषे नमः। सुमेधसे नमः। मेधजाय नमः। धन्याय नमः। सत्य-मेधसे नमः। धरा-धराय नमः। तेजो-वृषाय नमः। द्युति-धराय नमः। सर्व-

शस्त्र-भृतां वराय नमः। प्रग्रहाय नमः। निग्रहाय नमः। व्यग्राय नमः। नैक-शृङ्गाय नमः। गदाग्र-जाय नमः। चतु-र्मूर्तये नमः। चतु-र्बाहवे नमः। चतुर्व्यूहाय नमः। चतुर्गतये नमः। चतुरात्मने नमः। चतु-र्भावाय नमः। चतुर्वेद-विदे नमः। एकपदे नमः। समावर्ताय नमः। निवृत्तात्मने नमः। दुर्जाय नमः। दुरति-क्रमाय नमः। दुर्लभाय नमः। दुर्गमाय नमः। दुर्गाय नमः। दुरावासाय नमः। दुरारिघ्ने नमः। शुभाङ्गाय नमः। लोक-सारङ्गाय नमः। सुतन्तवे नमः। तन्तु-वर्धनाय नमः। इन्द्र-कर्मणे नमः। महा-कर्मणे नमः। कृतकर्मणे नमः। कृतागमाय नमः। उद्भवाय नमः (८००) सुन्दराय नमः। सुन्दाय नमः। रत्न-नाभाय नमः। सुलोचनाय नमः। अर्काय नमः। वाज-सनाय नमः। शृङ्गिने नमः। जयन्ताय नमः। सर्वविज्-जयिने नमः। उद्भवाय नमः। सुवर्ण-बिन्दवे नमः। अक्षोभ्याय नमः। अधोक्ष-जाय नमः। सर्व-वागीश्वराय नमः। महा-ह्रदाय नमः। महा-गर्ताय नमः। महा-भूताय नमः। महा-निधये नमः। कुमुदाय नमः। कुन्दराय नमः। कुन्दाय नमः। पर्जन्याय नमः। पावनाय नमः। अनिलाय नमः। अमृतांशाय नमः। अमृत-वपुषे नमः। सर्वज्ञाय नमः। सर्वतो-मुखाय नमः। सुलभाय नमः। सुव्रताय नमः। सिद्धाय नमः। शत्रुजिते नमः। शत्रु-तापनाय नमः। न्यग्रोधाय नमः। उदुम्बराय नमः। अश्वत्थाय नमः। चाणूरान्ध्र-निषूदनाय नमः। सहस्रा-र्चिषे नमः। सप्त-जिह्वाय नमः। सप्तै-धसे नमः। सप्त-वाहनाय नमः। अमूर्तये नमः। अनघाय नमः। अचिन्त्याय नमः। भयकृते नमः। भय-नाशनाय नमः। अणवे नमः। बृहते नमः। कृशाय नमः। स्थूलाय नमः। गुणभृते नमः। निर्गुणाय नमः। महते नमः। अधृताय नमः। स्वधृताय नमः। स्वास्याय नमः। प्राग्वंशाय नमः। वंश-वर्धनाय नमः। भार-भृते

नमः। कथिताय नमः। योगिने नमः। योगीशाय नमः। सर्व-कामदाय नमः। आश्रमाय नमः। श्रमणाय नमः। क्षामाय नमः। सुपर्णाय नमः। वायु-वाहनाय नमः। धनुर्धराय नमः। धनुर्वेदाय नमः। दण्डाय नमः। दमित्रे नमः। दमाय नमः। अपराजिताय नमः। सर्व-सहाय नमः। नियन्त्रे नमः। नियमाय नमः। यमाय नमः। सत्त्व-वते नमः। सात्त्विकाय नमः। सत्याय नमः। सत्य-धर्म-परायणाय नमः। अभिप्रायाय नमः। प्रियार्हाय नमः। अर्हाय नमः। प्रियकृते नमः। प्रीति-वर्धनाय नमः। विहायसगतये नमः। ज्योतिषे नमः। सुरुचये नमः। हुतभुजे नमः। विभवे नमः। रवये नमः। विरोचनाय नमः। सूर्याय नमः। सवित्रे नमः। रवि-लोचनाय नमः। अनन्ताय नमः। हुतभुजे नमः। भोक्त्रे नमः। सुखदाय नमः। नैकजाय नमः। अग्रजाय नमः। अनिर्विण्णाय नमः। सदा-मर्षिणे नमः। लोकाधिष्ठानाय नमः। अद्भूताय नमः। सनाते नमः। सनातन-तमाय नमः। कपिलाय नमः। कपये नमः। अव्ययाय नमः (९००) स्वस्ति-दाय नमः। स्वस्ति-कृते नमः। स्वस्तये नमः। स्वस्ति-भुजे नमः। स्वस्ति-दक्षिणाय नमः। अरौद्राय नमः। कुण्डलिने नमः। चक्रिणे नमः। विक्रमिणे नमः। उर्जित-शासनाय नमः। शब्दाति-गाय नमः। शब्द-सहाय नमः। शिशिराय नमः। शर्वरी-कराय नमः। अक्रूराय नमः। पेशलाय नमः। दक्षाय नमः। दक्षिणाय नमः। क्षमिणां वराय नमः। विद्वत्तमाय नमः। वीतभयाय नमः। पुण्य-श्रवण-कीर्तनाय नमः। उत्तारणाय नमः। दुष्कृतिघ्ने नमः। पुण्याय नमः। दुःस्वप्न-नाशाय नमः। वीरघ्ने नमः। रक्षणाय नमः। सदभ्यो नमः। जीवनाय नमः। पर्यवस्थिताय नमः। अनन्त-रूपाय नमः। अनन्त-श्रिये नमः। जित-मन्यवे नमः। भयापहाय नमः। चतुरस्राय नमः। गभीरात्मने नमः। विदिशाय

नमः। व्यादिशाय नमः। दिशाय नमः। अनादये नमः। भुवोभुवे नमः। लक्ष्मै नमः। सुधीराय नमः। रुचिराङ्गदाय नमः। जननाय नमः। जन-जन्मादये नमः। भीमाय नमः। भीम-पराक्रमाय नमः। आधार-निलयाय नमः। धात्रे नमः। पुष्प-हासाय नमः। प्रजागराय नमः। ऊर्ध्वगाय नमः। सत्पथा-चाराय नमः। प्राणदाय नमः। प्रणवाय नमः। पणाय नमः। प्रमाणाय नमः। प्राण-निलयाय नमः। प्राणभृते नमः। प्राण-जीवाय नमः। तत्त्वाय नमः। तत्त्वविदे नमः। एकात्मने नमः। जन्म-मृत्यु-जराति-गाय नमः। भुर्भुवः-स्वस्तरवे नमः। ताराय नमः। सवित्रे नमः। प्रपिता-महाय नमः। यज्ञाय नमः। यज्ञपतये नमः। यज्वने नमः। यज्ञाङ्गाय नमः। यज्ञवाहनाय नमः। यज्ञभृते नमः। यज्ञकृते नमः। यज्ञिने नमः। यज्ञभुजे नमः। यज्ञ-साधनाय नमः। यज्ञान्त-कृते नमः। यज्ञ-गुह्याय नमः। अन्नाय नमः। अन्नादाय नमः। आत्म-योनये नमः। स्वयञ्जाताय नमः। वैखानाय नमः। साम-गायनाय नमः। देवकी-नन्दनाय नमः। स्रष्ट्रे नमः। क्षितीशाय नमः। पाप-नाशनाय नमः। शङ्खभृते नमः। नन्दकिने नमः। चक्रिणे नमः। शार्ङ्ग-धन्वने नमः। गदाधराय नमः। रथाङ्ग-पाणये नमः। अक्षोभ्याय नमः। सर्वप्रहरणा-युधाय नमः (१०००)

।। स्वस्ति श्रीमन्नारायणार्पणम् अस्तु ।।

अपराध-सहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्त्वा क्षमस्व जगदीश्वर ।।